# २ कुरिन्थियों
# (2 Corinthians)

# २ कुरिन्थियों (2 Corinthians)

**१** **पौलुस** की ओर से जो परमेश्वर की इच्छा से मसीह यीशु का प्रेरित है, और भाई तीमुथियुस की ओर से परमेश्वर की उस कलीसिया
२ के नाम जो कुरिन्थुस में है; और सारे अखया के सब पवित्र लोगों के नाम । **हमारे** पिता परमेश्वर और प्रभु यीशु मसीह की ओर
३ से तुम्हें शर्तहीन दया और शान्ति मिलती रहे । **हमारे** प्रभु यीशु मसीह के परमेश्वर, और पिता का धन्यवाद हो, जो दया के पिता, और
४ सब प्रकार की शान्ति के परमेश्वर हैं । **वह** हमारे सब क्लेशों में शान्ति देते हैं; ताकि हम उस शान्ति के कारण जो परमेश्वर हमें
५ देते हैं, उन्हें भी तसल्ली दे सकें, जो किसी प्रकार के क्लेश में हों । **क्योंकि** जैसे मसीह के दुःख हम को अधिक होते हैं, वैसे ही हमारी
६ शान्ति भी मसीह के द्वारा अधिकाई से है । **यदि** हम क्लेश पाते हैं, तो यह तुम्हारी शान्ति और मुक्ति के लिये है और यदि शान्ति
पाते हैं, तो यह तुम्हारी शान्ति के लिये है; जिस के प्रभाव से तुम धीरज के साथ उन क्लेशों को सह लेते हो, जिन्हें हम भी
७ सहते हैं । **हमारी** आशा तुम्हारे विषय में स्थिर है; क्योंकि हम जानते है, कि तुम जैसे दुःखों के वैसे ही शान्ति के भी सहभागी हो ।
८ **हे** भाइयो बहनो, हम नहीं चाहते कि तुम हमारे क्लेश से अनजान रहो, जो एशिया में हम पर पड़ा, कि ऐसे भारी बोझ से दब गए

---

## अध्याय १

१:१ - ***"प्रेरित"*** - रोमि. १:१; १ कुरि. १:१; मत्ती १०:२ ।

***"परमेश्वर की इच्छा से"*** - वह यहाँ और पूरे पत्र में अपनी प्रेरिताई की सत्यता पर ज़ोर डाल रहा है । ऐसा इसलिए, क्योंकि कुरिन्थि के कुछ लोग उसकी इस बुलाहट पर आक्रमण कर रहे थे ।

***"तिमोथी"*** - पद १६, प्रेरित. १६:१-३, १ तिमो. १:२ ।

***"अखाया"*** - वह क्षेत्र (अखाया) जहाँ कुरिन्थि था ।

१:२ - रोमि. १:७

१:३-११ - यहाँ इस पत्र में दो महत्वपूर्ण विषय हैं - ***"प्रोत्साहन"*** (या शान्ति) और ***"समस्या ।"*** यूनानी भाषा के जिस शब्द का अनुवाद किया गया है (संज्ञा या क्रिया), वह १७ बार आया है । ***"क्लेश और दुःख"*** जिन यूनानी शब्दों से बने हैं, उतनी ही बार उनका उपयोग किया गया है । पौलुस अपनी समस्याओं के बारे में शिकायत नहीं कर रहा है - लेकिन सच्चाई इसके विपरीत है (६:१०; ७:४, १२:१०, रोमि. ५:३) । उसने यह भी पाया कि उसकी समस्याएँ और दुःख उसके लिए भलाई उत्पन्न कर रही हैं । हम उसकी कही हुयी बातों पर ध्यान दें ।

कष्टों और क्लेशों के कारण वह परमेश्वर के बारे में गहरा ज्ञान प्राप्त कर सका और लोगों को शान्ति देने के योग्य बना (पद ३,४) ।

उसने मसीह में ऐसी शान्ति का अनुभव किया, जिससे कि उसके दुःखों से कुछ लाभ हुआ (पद ५) ।

इसी कारणवश वह दूसरों को शान्ति भी दे सका (पद ४,६) ।

वह परमेश्वर पर भरोसा रखना सीख सका वह यह भी सीख सका कि विश्वासियों के (पद ६) जीवन अनन्तकाल के लिए और अधिक महिमा को उत्पन्न करने वाले हैं (पद ४:१७) ।

उसने यह भी सीखा कि उसकी कठिनाईयाँ जितनी अधिक बढ़ती गयी, उसमें परमेश्वर की ताकत भी बढ़ती गयी (१२:६,१०) । अय्यूब ३:२० पर टिप्पणी देखें ।

१:३ - अपनी समस्याओं और कठिनाईयों के कारण पौलुस ने परमेश्वर के स्वभाव के सम्बन्ध में गहराई से सीखा था ।

***"शर्तहीन दया"*** - निर्ग. ३४:६; भजन. ८६:१५; १०३:१३; १११:४; १४५:८; विलाप. ३:२२; मीका ७:१६; मत्ती ६:३६ ।

***"शान्ति** - या **तसल्ली"*** (यूनानी में दोनों ही अर्थ हैं) - अपने वचन और उपस्थिति से परमेश्वर निरन्तर शान्ति दिया करते हैं - भजन २३:४; ११९:५०; यशा. ४०:१; ६१:२; ६६:१३; रोमि. १५:४,५; २ थिस्सु. २:१६,१७; इब्रा. ६:१८ । परमेश्वर के आत्मा का एक नाम, ***"शान्ति देने वाला"***, उसी यूनानी शब्द से निकला है । यूहन्ना १४:१६ के ***'नोट्स'*** देखें ।

१:४ - ***"हमारे सभी क्लेशों में"*** - परमेश्वर सारी शान्ति के स्त्रोत हैं (पद ३) हर समस्या में शान्ति देते हैं । यदि विश्वासी नहीं चाहेंगे तो परमेश्वर कुछ नहीं कर सकते । मत्ती २:१८ देखें । यह ध्यान दें कि परमेश्वर पौलुस को साहस देते हैं ताकि वह दूसरों की हिम्मत बढ़ा सके (पद ६) ।

१:५ - ***"मसीह के दुःख"*** - रोमि. ८:१७ फिलि. १:२९; ३:१०; कुलु. १:२४ यीशु मसीह ने दूसरों के लिए दुःख उठाया । वह अभी भी अपने लोगों में होकर दुःख उठाते हैं (प्रेरित ६:४,५) । जो लोग जानबूझकर दूसरों के लिए दुःख उठाते है वे ही उनके द्वारा मिलने वाली शान्ति को समझ सकते हैं यूहन्ना १६:३३ ।

१:६ - पौलुस का जीवन दूसरों के लिए था । उसकी समस्याएँ और प्रोत्साहन उन्हीं के लिए थे । (१ कुरि. ९:१९-२३; १०:२४,३३; २ तीमु २:१०) । जो लोग उनकी राह पर चलते हैं, उन्हीं को परमेश्वर से शान्ति प्राप्त करने का अधिकार है । क्लेश उठाने का परिणाम ***"धीरज से सहना"*** है - रोमि. ५:३-५; याकूब १:२-४; ५:११ ।

१:७ - ***"कुरिन्थि में रहने वाले विश्वासियों को भी क्लेश थे ।"*** उन्हें भी यातना सहनी पड़ रही थी, किन्तु उतनी नहीं, जितनी पौलुस सह रहा था । मसीह और उसके लोगों के साथ दुखों में भाग लेना मसीह में शान्ति और आनन्द में भी भाग लेना है ।

१:८ - ***"एशिया"*** - प्रेरित १६:६; १८:१९ । इफिसुस एशिया का प्रमुख शहर था ।

***"दबाव"*** - पद १०; ४:८,९; ६:६; ११:२३-२६ से तुलना करें । जिन संकटों और कठिनाईयों का वह साम्हना कर रहा था, वे सब उसके सहने की सीमा से अधिक थे ।

९ थे, जो हमारे सहने से बाहर था, यहां तक कि हम जीवन से भी हाथ धो बैठे थे । **हमने** अपने मन में समझ लिया था,
कि हम पर मौत की आज्ञा हो चुकी है, कि हम अपने ऊपर भरोसा न रखें, वरन् परमेश्वर के ऊपर जो मरे हुओं को जिलाते हैं ।
१० **उन्हीं ने** हमें ऐसी बड़ी मृत्यु से बचाया, और बचाएंगे; और उन से हमारी यह आशा है, कि वह आगे को भी बचाते रहेंगे ।
११ **तुम** भी मिलकर प्रार्थना के द्वारा हमारी सहायता करो, कि जो खतरों से सुरक्षा बहुतों की प्रार्थना द्वारा हमें मिली, उसके कारण
१२ बहुत लोग हमारी ओर से पिता का धन्यवाद करें । **क्योंकि** हम अपने विवेक की इस की इस गवाही पर आनन्दित होते हैं, कि जगत
में और विशेष करके तुम्हारे बीच हमारा चरित्र परमेश्वर के योग्य ऐसी पवित्रता और सच्चाई सहित था, जो शारीरिक ज्ञान से नहीं,
१३ परन्तु परमेश्वर का अनुग्रह सहायता से था । **हम** तुम्हें और कुछ नहीं लिखते, केवल वह जो तुम पढ़ते या मानते भी हो, और
१४ मुझे आशा है, कि अन्त तक भी मानते रहोगे । **जैसा** तुम में कितनों ने मान लिया है, कि हम तुम्हारे आनन्द का कारण हैं; वैसे
१५ ही तुम भी यीशु के दिन हमारे लिये आनन्द का कारण ठहरोगे । **इस** भरोसे से मैं चाहता था कि पहिले तुम्हारे पास आऊं; कि तुम्हें
१६ एक और दान मिले । **यह** भी कि तुम्हारे पास से होकर मकिदुनिया को जाऊं; और फिर मकिदुनिया से तुम्हारे पास आऊं; और तुम मुझे
१७ यहूदिया की ओर कुछ दूर तक पहुंचाओ । **इसलिये** मैं ने जो यह इच्छा की थी तो क्या मैं ने चचंलता दिखाई ? या जो करना
१८ चाहता हूं क्या सांसारिक सोच विचार के अनुसार करना चाहता हूं, कि मैं बात में हां, हां भी करूं; **और** नहीं नहीं भी करूं ? परमेश्वर
१९ सच्चे गवाह हैं, कि हमारे उस वचन में जो तुम से कहा हां और नहीं दोनों नहीं पाए जाते । **क्योंकि** परमेश्वर के पुत्र यीशु मसीह

---

१:९ - ***"मृत्यु"*** - ऐसा लगता है कि वह समझ गया था कि उसकी मृत्यु का समय आ गया है । किन्तु यह भी उसके लाभ की बात थी (रोमि. ८:२८) । पहले से अधिक वह परमेश्वर पर निर्भर था । उसे इस बात का एहसास था, कि यदि परमेश्वर लोगों को मृत्यु से जिला सकता है, तो बड़े संकट में से भी निकाल सकता है ।

१:१० - अवश्य यह एक चमत्कारिक और अविश्वसनीय मुक्ति रही होगी । इसके द्वारा पौलुस को भविष्य के सम्बन्ध में बहुत बड़ा आश्वासन मिला । २ तीमु. ४:१८ से तुलना करें । १ शमूएल १७:३४-३७ भी देखें ।

१:११ - कुरिन्थि में घटिया किस्म के जीवन के लिए पौलुस ने वहाँ विश्वासियों को डाँटा । - १ कुरि. ३:१-४; ५:१,२; ६:१; आदि । वह उनकी प्रार्थनाओं की कीमत जानता था, कि उनसे उसे सहायता मिलेगी (फिलि १:१९ और फिलेमोन २२ से तुलना करे) । इसके द्वारा हम यह सीखें कि निर्बल और प्रायः गिरते रहने वाले विश्वासी बिना परमेश्वर की सामर्थ के नहीं है । यह भी देखें कि पौलुस यह चाहता था कि परमेश्वर के लिए धन्यवाद में बढ़ावा हो (४:१५; ९:११-१३) ।

१:१२-१४ - कुरिन्थि में कुछ लोग पौलुस की विश्वासयोग्यता और सच्चाई के विषय में प्रश्न उठा रहे थे (१३:३) । इसलिए वह ये शब्द लिखता है। उनके लिए यह महत्व की बात थी कि उस पर भरोसा रखें, वह भी इसलिए नहीं कि उसका लाभ हो, किन्तु स्वयं उनका । उसका गर्व करना, उसके स्वयं के लिए सुरक्षा नहीं थी, किन्तु उसके द्वारा प्रचार किए गए सुसमाचार और उसकी प्रेरिताई के पद के लिए । इस पूरे पत्र में वह अपना ध्यान ११:१३ के झूठे शिक्षकों की ओर लगाता है । वे एक झूठे संदेश को ले आए थे और उसके बचाव के लिए, उन्हें पौलुस पर आक्रमण करना था । सच्चे शुभसंदेश के बचाव के लिए, पौलुस को अपने बचाव की दलील पेश करनी थी । जहाँ तक कुरिन्थि के निवासियों की बात थी, शुभसंदेश की सफलता पौलुस पर निर्भर थी । जो कुछ भी उसने उन्हें लिखा, वह सब उनके लाभ के लिए था (१२:१९) । उस समय तक नयी वाचा से सम्बन्धित पुस्तक बनी नहीं थी, न कोई सुसमाचार लिखा गया था ।

१:१२ - ***"घमण्ड"*** - इस पत्र में यह भी एक महत्वपूर्ण विषय है । इक्तीस बार वह इस शब्द का संज्ञा या क्रिया के रूप में उपयोग करता है । उदा. के लिए देखें १०:८,१३; ११:१६ । इसी शब्द का अनुवाद रोमि. ५:२,३ और फिलि. ३:३ में ***"आनन्दित रहो"*** किया गया है । पौलुस जो घमण्ड यहाँ करता है, वह परमेश्वर में पवित्र आनन्द है । यह वह घमण्ड नहीं है जिसे पापी अविश्वासी करते हैं । वे अपने बल, बुद्धि और योग्यता पर घमण्ड करते हैं । पौलुस ने परमेश्वर पर घमण्ड किया और इस बात पर कि परमेश्वर ने किस प्रकार उसमें कार्य किया । उसे यह मालूम था कि जो कई अच्छी बात उसमें है वह परमेश्वर की ओर से है और परमेश्वर की दया के कारण हैं तुलना करें रोमि. ७:१८; १ कुरि. १:२६,३१ ।

१:१४ - ***"दिन"*** - वह दिन जब मसीह लौटेंगे । वह यह जानता था कि उस समय उसमें वे आनन्द का एक कारण ठहरेंगे । फिलि. ४:१, १ थिस्स. २:१९,२० ।

१:१५-२४ - ये पद इस सत्य का कारण बताते हैं कि कुरिन्थि के कुछ लोग उसकी विश्वासयोग्यता और इमानदारी पर सन्देह क्यों कर रहे थे । पौलुस यहाँ उनके सन्देह के सम्बन्ध में उत्तर देता है । पौलुस ने फिर से कुरिन्थि जाने की योजना बनायी थी । उसने उन्हें यह बताया था । कुछ कारणों से वह नहीं जा सका । उसके विरोधी उसकी इस बदली योजना को इस बात का आधार बना रहे थे, कि उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है । वह शुभसंदेश के बारे में भी अपने मत को बदल सकता है । पौलुस अपने सम्मान से अधिक सुसमाचार के सम्मान के बारे में चिन्तित था । यह दोनों बातें आपस में जुड़ी हुयी हैं । इसलिए मसीह के सुसमाचार के लिए वह अपने सम्मान के विषय में साफ-साफ बतलाता था । इस बात में वह मसीह के सभी सेवकों के लिए एक नमूना था । हम सभी को यह जानना चाहिए कि हमारी प्रतिष्ठा और सुसमाचार की प्रतिष्ठा एक दूसरे से जुड़ी हुयी है ।

१:१५-१७ - यह उसकी आरम्भिक योजना थी, जिसे उसे बदलना पड़ा था (१ कुरि. १६:५-७ से तुलना करें) । उन्हें ऐसा लगा कि वह अपनी योजनाओं को किसी ठोस कारण से नहीं बदलता था । उनके विचारों से वह सांसारिक लोगों के समान कर रहा था । वे यह कल्पना कर रहे थे कि वह चंचल मन का है और बिना सोचे समझे कुछ भी कहता है ।

१:१८-२० - पौलुस को यह अचम्भा हुआ, कि उसके विषय में जैसा पद १७ में है, वे यह सब सन्देह कर रहे थे । इसलिए वह गंभीरता से उन्हें आश्वासन देता है कि ऐसा नहीं है । उसका संदेश और प्रचार सदा से ***"हाँ वाला"*** रहा है । इन सभी महत्वपूर्ण विषयों पर वह अपने विचारों को बदलने वाला नहीं था । वह उन्हें यह भी कह सकता था कि जिस मसीह का प्रचार वह करता था,

जिस का हमारे द्वारा अर्थात् मेरे और सिलवानुस और तीमुथियुस के द्वारा तुम्हारे बीच में संदेश दिया गया उस में हां और नहीं
२० दोनों नहीं थे; परन्तु, उस में हां ही हां हुई । **क्योंकि** परमेश्वर की जितनी प्रतिज्ञाएं हैं, वे सब उन्हीं में हां के साथ हैंः इसलिये
२१ उनके द्वारा पूरी भी होंगी, कि हमारे द्वारा परमेश्वर की महिमा हो । **और** जो हमें तुम्हारे साथ मसीह में दृढ़ करते हैं और जिन्होंने
२२ हमारा अभिषेक किया वही परमेश्वर हैं । **जिन्होंने** हम पर छाप भी कर दी है और बयाने में आत्मा को हमारे मनों में दिया ।
२३,२४ **मैं** परमेश्वर को गवाह करता हूं, कि मैं अब तक कुरिन्थुस में इसलिये नहीं आया, ताकि तुम्हें दुःख न हो । **यह** नहीं, कि हम विश्वास
**२** के विषय में तुम पर अधिकार जताना चाहते हैं; परन्तु तुम्हारे आनन्द में सहायक हैं क्योंकि तुम विश्वास ही से स्थिर रहते हो । **मैं ने**
२ अपने मन में यही ठान लिया था कि फिर तुम्हारे पास दुःख देने न आऊं । **क्योंकि** यदि मैं तुम्हें उदास करूं, तो मुझे
३ आनन्द देनेवाला कौन होगा, केवल वही जिस को मैं ने उदास किया ? **और** मैं ने यही बात तुम्हें इसलिये लिखी, कि कहीं
ऐसा न हो, कि मेरे आने पर जिन से आनन्द मिलना चाहिए, मैं उन से दुःख न पाऊं; क्योंकि मुझे तुम सब पर इस बात का भरोसा
४ है, कि जो मेरा आनन्द है, वही तुम सब का भी है । **बड़े क्लेश,** और मन के कष्ट से, मैं ने बहुत से आंसू बहा बहाकर तुम्हें
५ लिखा, इसलिये नहीं, कि तुम उदास हो, परन्तु इसलिये कि तुम उस बड़े प्रेम को जान लो, जो मुझे तुम से है । **और** यदि किसी
ने उदास किया है, तो मुझे ही नहीं वरन् (कि उसके साथ बहुत कड़ाई न करूं) कुछ कुछ तुम सब को भी उदास किया है ।
६,७ **ऐसे** जन के लिये यह दण्ड जो भाइयों में से बहुतों ने दिया, बहुत है । **इसलिये** इस से यह भला है कि उसका अपराध क्षमा
८ करो; और शान्ति दो, न हो कि ऐसा मनुष्य बहुत उदासी में डूब जाए । **इस कारण** मैं तुम से बिनती करता हूं, कि उस को अपने

---

उनके बारे में किसी प्रकार का बदलाव नहीं है । प्रत्येक प्रतिज्ञा जिसे परमेश्वर करते हैं, वह मसीह में पूरा करेंगे । पद १९ का सिलवानुस सीलास ही है ।

१:२१ - परमेश्वर के सुसमाचार और परमेश्वर के सत्य के सम्बन्ध में सभी विश्वासियों को डावांडोल नहीं होना चाहिए (१ कुरि. १५:५८; १६:१३) । परमेश्वर ही उनको ऐसा बना सकते हैं (रोमि. १६:२५; १ पत. ५:१०).

***"अभिषेक"*** - पौलुस यह नहीं कहता है, कि मुझे अभिषेक किया किन्तु ***'हमें'*** किया । परमेश्वर सभी विश्वासियों का अभिषेक करते हैं - १ यूहन्ना २:२०,२७ । वह अपनी आत्मा से उन्हें अभिषेक देते हैं और सारी मानवजाति से अलग करके याजकों का समाज बनाते हैं (प्रका. १:६; मत्ती १:१ के नोट्स देखें । लूका ४:१८; प्रेरित. १०:३८ से तुलना करें) ।

१:२२ - ***"छाप"*** - इफि. १:१३; ४:३०; २ थिस्स. २:१६ से तुलना करें । विश्वासियों में परमेश्वर के आत्मा और उनकी उपस्थिति की वह छाप है, जो उन्हें ***"परमेश्वर के विशेष लोग"*** करके अलग करती है (१ कुरि. ६:१६,२०; रोमि. ८:६; यूहन्ना १७:६,१०
***"बयाने"*** - देखें । ५:५; इफि. १:१४ और उन पर नोट्स देखें । परमेश्वर के द्वारा विश्वासियों को पवित्रात्मा दिया जाना इस बात की गारण्टी है कि जिस मीरास की उन्होंने प्रतिज्ञा की है, वह भी उन्हें दी जाएगी (रोमि. ८:१७,२३; इफि. १:१३,१४; १ पत. १:४) । उनके अन्तिम उद्धार के लिए परमेश्वर द्वारा दी गयी यह प्रतिज्ञा है । क्योंकि परमेश्वर की आत्मा हम में है, इसलिए, हम कभी भी नाश नहीं होंगे । यूहन्ना ६:३७-४०; १०:२७-२६; १७:११,१२; रोमि. ५:६,१०; ८:२८-३६ भी देखें ।

१:२३ - यह देखें कि वह कितनी गंभीरता से बोलता है । सुसमाचार की इज़्जत उसकी सबसे बड़ी चिन्ता थी । अब वह अपने मन बदलने का कारण बतलाता है । ऐसा नहीं कि उसे अपने कहे वचन के बारे में ध्यान नहीं था । वह अपनी कही हुयी बात के बारे में गंभीर था । २:१-४ भी देखें । उसका कहने का अर्थ यह था कि कुरिन्थि की कलीसिया की हालत यह थी कि उसके आने से उसे और उन्हें दुख और पीड़ा होने वाली थी । वह यह नहीं चाहता था । देखें १ कुरि. ४:२१ ।

१:२४ - वह नहीं चाहता था कि लोग उसे गलत समझें । वह तानाशाह नहीं था, जो उन्हें ज़बरदस्ती कुछ करने के लिए कहे । यह उनका अपना विश्वास था, जिससे वे स्थिर थे । यह उनके ऊपर प्रभाव रखने वाला उसका अधिकार नहीं था । (१३:१०) १ पत. ५:३ से तुलना करें ।

## अध्याय २

२:१-४ १:२३ देखें - कुछ ज्ञानी समझते हैं कि पौलुस ३,४ पद में जिस पत्र की ओर संकेत कर रहा है वह कुरिन्थियों का पहला पत्र है । किन्तु ऐसा लगता है कि यह कोई और पत्र था । वह शायद खो गया था और परमेश्वर के आत्मा ने उसे बाइबिल का एक भाग नहीं बनने दिया ।

२:५-१० - यदि ३,४ पद में जिस पत्र की ओर संकेत है कुरिन्थियों का पहला पत्र था, तो जिस व्यक्ति के बारे में वह इन पदों में कह रहा है, वह १ कुरि. ५:१-५ वाला व्यक्ति ही है । किन्तु यह संभव है कि पौलुस किसी और व्यक्ति के विषय ही कह रहा है - जिसने व्यक्तिगत रीति से पौलुस के विरोध में बुरा किया था । उपयोग की गयी भाषा यहाँ इस ओर संकेत करती है । किन्तु उन दोनों के द्वारा एक बात ही सीखने को मिलती है । एक व्यक्ति जो मण्डली के विरोध में पाप करता है, जब कलीसिया द्वारा अनुशासित किया जाता है, उसे क्षमा किया जाना चाहिए । उसे वापस संगति में ग्रहण किया जाना चाहिए ।

२:६ - ***'दण्ड'*** का यहाँ अर्थ अनुशासन से है - झुण्ड से बाहर निकाला जाना या उसके साथ सहभागिता समाप्त करना या इससे मिलती जुलती बात (१ कुरि. ५:१३; २ थिस्स. ३:१७ से तुलना करें)

२:७,८ - कलीसियाई अनुशासन का उद्देश्य मात्र दण्ड देना नहीं है, किन्तु पाप में पड़े व्यक्ति को पश्चात्ताप के स्थान पर लाना है । ये पद दिखाते हैं कि उस व्यक्ति ने अपने जीवन में बदलाव लाना स्वीकार किया था और दुष्टता के कारण शोकित था । पौलुस कहता है, कि विश्वासियों को यह देखना चाहिए और जानना चाहिए कि अनुशासन कब समाप्त करें और क्षमा करना एवं शान्ति देना

९ प्रेम का प्रमाण दो । **क्योंकि** मैं ने इसलिये भी लिखा था, कि तुम्हें परख लूं, कि सब बातों के मानने के लिये तैयार हो, कि नहीं ।
१० **जिस** का तुम कुछ क्षमा करते हो उसे मैं भी क्षमा करता हूं, क्योंकि मैं ने भी जो कुछ क्षमा किया है, यदि किया हो, तो तुम्हारे
११ कारण मसीह की जगह में होकर क्षमा किया है । **कि शैतान** का हम पर दांव न चले, क्योंकि हम उसकी चालाकियों से अनजान
१२,१३ नहीं । **जब** मैं मसीह का सुसमाचार सुनाने को त्रोआस में आया, और प्रभु ने मेरे लिये एक द्वार खोल दिया । **तब** मेरे मन
में चैन न मिला, इसलिये कि मैं ने अपने भाई तीतुस को नहीं पाया; सो उन से विदा होकर मैं मकिदुनिया को चला गया ।
१४ **परन्तु** परमेश्वर का धन्यवाद हो, जो मसीह में सदा हम को जीत के जूलुस में लिये चलते हैं; और अपने ज्ञान की सुगन्ध हमारे द्वारा हर
१५ जगह फैलाते हैं । **क्योंकि** हम परमेश्वर के निकट उद्धार पानेवालों, और नाश होनेवालों, दोनों के लिये मसीह की सुगन्ध हैं ।
१६ **कितनों** के लिये तो मरने के लिये मौत की गन्ध, और कितनों के लिये जीवन के लिये जीवन की सुगन्ध, और इन बातों के करने
१७ योग्य कौन है ? **क्योंकि** हम उन बहुतों के समान नहीं, जो परमेश्वर के वचन में मिलावट करते हैं; परन्तु मन की सच्चाई से, और

---

कब आरम्भ करें । वह यह नहीं कहता है कि अनुशासन और पश्चात्ताप से पहले उन्हें क्षमा किया जाना चाहिए या शान्ति देनी चाहिए । जब मसीही पाप में गिरते हैं, कलीसिया के अगुवों को न बहुत नर्मी का व्यवहार करना चाहिए न अधिक कठोरता का । अनुशासन के साथ प्रेम भी होना चाहिए ।

२:९ - ***"मानने के लिए तैयार"*** इसका अर्थ उसके प्रति आज्ञाकारिता से नहीं है (१:२४) । किन्तु उसके द्वारा प्रभु के निर्देशों के प्रति । इन दोनों के बीच एक बड़ा अन्तर है । कुछ मसीही अगुवे अपने प्रति आज्ञाकारिता पर ज़ोर डालते हैं । पौलुस चाहता था, कि प्रभु यीशु के प्रति लोग आज्ञाकारी हों ।

२:१० - व्यक्तिगत रीति से उस ने अपराध करने वाले व्यक्ति को क्षमा कर दिया था । उस व्यक्ति ने अपराध मान लिया था और इसलिए पौलुस उसके अपराध को छोटी बात समझ रहा था । इसलिए यदि वह १ कुरि. ५:१-५ में वर्णित व्यक्ति के अपराध की बात कर रहा था तो यह असम्भव है । वह छोटी बात नहीं थी और पौलुस ने इस प्रकार से समझा भी न होता । किन्तु व्यक्तिगत रीति से उसके विरोध में किए गए किसी भी अपराध को वह क्षमा करने के लिए तैयार था । इस प्रकार की क्षमा के विषय में देखें मत्ती. ६:१२,१४,१५; १८:२१-३५; इफि. ४:३२; कुलु. ३:१३ । पौलुस को यह मालूम था कि मसीह की आँखे उसकी ओर हैं । यह भी कि दूसरों को क्षमा करने से कहीं अधिक परमेश्वर ने उसे क्षमा किया था ।

२:११ - शैतान का यह उद्देश्य है कि वह विश्वासियों के जीवन को बर्बाद कर डाले, कलीसियाओं को उजाड़े और मसीह का अपमान हो । यह सब कुछ करने के लिए उसके पास योजनाएँ थी । वह मसीह के लोगों को पाप करने के लिए उकसाता है । इस प्रकार से करता है कि वे क्षमा प्राप्त करने की लालसा में तड़पते रहें । वह प्रयास करता है कि उनके पश्चाताप किए बिना, कलीसिया उन्हें स्वीकार कर ले । किसी एक या अधिक सदस्यों के द्वारा वह मण्डली की शान्ति और व्यवस्था को भंग करने का प्रयास करता है । वह यह कोशिश करता है कि कलीसियाई अगुवे पाप को हल्का फुल्का समझें या पाप करने वालों के साथ कठोरता से व्यवहार करें । शैतान पर नोट्स देखें जो १ इति. २१:१; मत्ती ४:१ और यूहन्ना ८:४४ में हैं ।

२:१२ - ***"द्वार"*** - प्रेरित. १४:२७; १ कुरि. १६:९; कुलु. ४:३; प्रका. ३:८

२:१३ - ***"तीतुस"*** - पौलुस ने तीतुस को कुरिन्थि भेज दिया था (७:६,७) और त्रोआस में उससे मिलने वाला था । जब तीतुस वहाँ नहीं पहुँचा, तब कुरिन्थि की स्थिति के बारे में पौलुस परेशान रहा । उनके लिए उसका प्रेम विशाल था (पद ४) । वह दिल से चाहता था कि उसके पत्रों का उत्तर उसे तुरन्त मिले ।

***"मकिदुनिया"*** - १-१६

२:१४ - कलीसियाओं में समस्याओं और संसार में समस्याओं के होने के बावजूद परमेश्वर अपने लोगों को एक जीत के बाद दूसरी जीत देते हैं । रोमि. ८:३७ से तुलना करें । ***"सर्वदा"*** और ***"मसीह में"*** शब्दों पर ध्यान करें । उनके बगैर हमारे प्रयास सदैव सफल नहीं होंगे । उन्हें वह सफलता प्राप्त हो सकती है, जिसे लोग सफलता समझते हैं, किन्तु परमेश्वर उन्हें पुरुस्कृत नहीं करते हैं ।

***"सुगन्ध"*** - हृदय के लिए मसीह का ज्ञान सुगन्ध महसूस करने वाली इन्द्रिय के लिए कीमती इत्र के समान है । पौलुस और उसके सहकर्मी जहाँ कहीं जाते थे, वहाँ इसे फैलाते थे । क्या हम ऐसा करते हैं ?

२:१५ - ***"सुगन्ध"*** - मुक्ति पाए हुए और मुक्ति न पाए हुए, विश्वासी और अविश्वासी दोनों प्रकार के लोगों के लिए मसीह के सेवक मसीह के सम्बन्ध में ज्ञान फैलाते हैं । इस तरह से वे परमेश्वर के लिए ***"सुगन्ध"*** (खशबु) के समान हो जाते हैं । एक व्यक्ति जिसके वस्त्रों पर इत्र लगा है, जहाँ जाता है, सुगन्ध फैलाता है । एक व्यक्ति जिसमें मसीह है, मसीह के विषय में बात करता है, मसीह के संदेश को दूसरों तक पहुँचाता है, मसीह की सुगन्ध को दूसरों तक पहुँचाता है । विश्वासियों में पाप या संसार की बदबू तक नहीं आनी चाहिए ।

२:१६ - जब मसीह के सेवकों द्वारा संदेश पहुँचाया जाता है, तो विश्वास करनेवालों को जीवन देता है, जो ग्रहण नहीं करते उनके लिए मृत्यु । यूहन्ना ३:३६ से तुलना करें । इसलिए जो लोग मसीह पर विश्वास करना अस्वीकार करते हैं, सुसमाचार एक मारनेवाली सुगन्ध के समान होता है । परन्तु जो लोग विश्वास करते हैं, उनके लिए अनन्त जीवन के लिए सुगन्ध है ।

***"जो काफी है"*** मसीह के ज्ञान को फैलाने के कार्य के लिए कोई व्यक्ति सक्षम नहीं है । ३:५,६ देखें । एक है जो हमें योग्य बना सकता है ।

२:१७ - ***"वचन में मिलावट"*** - पौलुस को मालूम था कि ऐसे लोग हैं, जो दावा करते थे कि वे मसीह के सेवक हैं, किन्तु अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए मसीह के संदेश को हल्का फुल्का बनाते थे । यूनानी भाषा में ***"मिलावट"*** शब्द का अर्थ ***"खिलवाड़"*** भी हो सकता है या दोनों ही अर्थ हो सकते है । बेईमान व्यापारी प्रायः अधिक लाभ कमाने के लिए मिलावट करते हैं । कुछ नाम के मसीही कार्यकर्ता इस तरह के हैं । वे जो कुछ भी मिलावट करते हैं, वह मसीह के सम्बन्ध में है । उनकी सेवा मात्र इसीलिए होती है, कि उन्हें कुछ

३ परमेश्वर की और से परमेश्वर को उपस्थित जानकर मसीह में बोलते हैं । **क्या** हम फिर अपनी बड़ाई करने लगे ? या हमें कितनों
२ की तरह सिफारिश की चिट्ठियाँ तुम्हारे पास लानी या तुम से लेनी हैं ? **हमारे** पत्र तुम ही हो, जो हमारे दिलों पर लिखे हुए हो,
३ और उसे सब मनुष्य पहिचानते और पढ़ते हैं । **यह** प्रगट है, कि तुम मसीह के पत्र हो, जिस को हम ने सेवकों की तरह लिखा;
और जो सियाही से नहीं, परन्तु जीवते परमेश्वर के आत्मा से पत्थर की तख्तियों पर नहीं, परन्तु दिलों की मांस रूपी तख्तियों पर
४,५ लिखी है । **हम** मसीह के द्वारा परमेश्वर पर ऐसा ही भरोसा रखते हैं । **यह** नहीं, कि हम अपने आप से इस योग्य हैं, कि
६ अपनी ओर से किसी बात का विचार कर सकें; किन्तु हमारी योग्यता परमेश्वर की ओर से है । **जिस** ने हमें नई वाचा के सेवक
७ होने के योग्य भी किया । अक्षर के सेवक नहीं किन्तु आत्मा के, क्योंकि अक्षर मारता है, परन्तु आत्मा जिलाता है । **यदि** मौत
की वह वाचा जिस के अक्षर पत्थरों पर खोदे गए थे, यहां तक तेजोमय हुई, कि मूसा के मुंह पर के तेज के कारण जो घटता

---

प्राप्त हो - १ तीमु. ६:५; यूहन्ना १२:४-६; २ पत. २:१५ से तुलना करें ।

***"सच्चाई"*** - १:१२, १८, १६

***"परमेश्वर को उपस्थित जानकर"*** - पौलुस जानता था कि परमेश्वर की आँखे उस पर लगी हुयी हैं । इसी प्रकाश में वह जीने का प्रयास करता था । किसी के जीवन में यह सच्चाई एक बड़ा परिवर्तन ला सकती है ।

## अध्याय ३

३:१ - इन दोनों प्रश्नों का उत्तर ***"नहीं"*** है । पौलुस यह नहीं कह रहा है कि अनुमोदन या प्रशंसा के पत्र का कोई स्थान नहीं है । उसने स्वयं कभी कभी दूसरों के लिए प्रशंसा पत्र लिखे थे (८:१६-२४; रोमि. १६:१,२; १ कुरि. १६:३,१०,११) । किन्तु यहाँ वह कहता हैं, कि उसे स्वयं के लिए ऐसा कुछ नहीं चाहिए ।

३:२,३ - कुरिन्थियों के लोग पौलुस के लिए स्वयं प्रशंसा पत्र थे । एक पत्र से तुलना करें तो मालूम पड़ता है कि उनके बारे में ये बातें कहीं गयी हैं । वे पौलुस और उसके सहकर्मियों के हृदय में लिखी हुयी थीं (पौलुस और दूसरे लोग उनमें किए कार्य के प्रति जागरूक थे और उन्हें बहुत प्रेम करते थे - ७:३) । वे पौलुस के हृदय में छिपे पत्र नहीं थे - किन्तु एक पत्र जो कोई भी पढ़ सकता था (पौलुस की सेवकाई द्वारा उनमें उत्पन्न परिवर्तन को हर व्यक्ति देख सकता था) । पत्र ***"मसीह का"*** था (यह उसकी योजना, उसका संदेश था, जिससे उनमें परिवर्तन आया था । ये पौलुस और उसके सहकर्मियों के (मसीह ने उसे इस कार्य में उपयोग किया था) पत्र थे । वे परमेश्वर के आत्मा से उत्पन्न किए गए थे (यूहन्ना ३:५-८ से तुलना करें) । यह ***"लेखन"*** उनके हृदय में किया गया था (परिवर्तन मात्र बाहरी नहीं था, किन्तु भीतरी था - ५:१७) । उसकी तुलना पौलुस उस व्यवस्था से करता है जो परमेश्वर ने पत्थर की पटियाओं पर दी थी । निर्ग. ३१:१८; ३२:१५,१६ देखें । यिर्म. ३१:३३,३४; इब्रा. ८:१०-१२ से तुलना करें ।
परमेश्वर के सेवक परमेश्वर के साथ कार्य करते हुए ***"पत्र"*** का निर्माण करते हैं - वे लोग जो वास्तविक रीति से सदा- सदा के लिए बदल डाले जाते हैं । क्या इस पृथ्वी पर इस कार्य से अधिक और कोई बड़ा कार्य है ?

३:३-११ - इन पदों में पौलुस नयी वाचा से पुरानी वाचा की तुलना करता है ।
पुरानी वाचा एक सेवा थी, जिससे मृत्यु उत्पन्न हुयी (पद ६,७) किन्तु नयी वाचा जीवन लायी (पद ६) पुरानी वाचा लोगों को दोषी ठहराती थी, नयी दोष को हटाती है और लोगों को धर्मी ठहराती है (पद ८; रोमि. ३:१६-२४) ।
पुरानी व्यवस्था पत्थर पर लिखी हुई थी (निर्ग. ३१:१८); किन्तु नई लोगों के हृदयों पर लिखी गई है ।
पुरानी ***"मुर्झा रही थी"*** (पद ११; इब्रा. ८:२४), किन्तु नयी स्थायी है (पद ११) ।
संक्षेप में पुरानी वाचा व्यवस्था और आज्ञाओं में थी, जो लोगों के हृदय बदल नहीं सकती थी (निर्ग. १६:५,६ के नोट्स देखें) । किन्तु नयी परमेश्वर के आत्मा की सेवकाई को लायी, जिससे लोग नए बन जाते हैं (पद ३,६,८) ।
पुरानी में कुछ महिमा थी, नयी में उससे अधिक (पद ८-११).
ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ लोग कुरिन्थि के मसीहियों को यह कहकर परेशान कर रहे थे, कि उन्हें मूसा की व्यवस्था को भी मानना है । प्रेरित. १५:१,२ से तुलना करें । पौलुस दिखाता है कि उनके द्वारा किए जाने वाली व्यवस्था से अधिक महान, सुसमाचार था ।

३:४ - वह जानता था कि ऊपर वर्णित कार्य में परमेश्वर उसे उपयोग में ला रहे थे । स्वयं मसीह ने उसे आश्वासन दिया था ।

३:५,२:१६ देखें - जो व्यक्ति बुलाया नहीं गया और तैयार नहीं किया गया वह इस असंभव कार्य को नहीं कर सकता । कार्य में पौलुस का भरोसा, उसकी स्वयं की योग्यताओं में भरोसा नहीं था । वह जानता था कि स्वयं परमेश्वर ने वह सब करने के योग्य उसको बनाया था (१ कुरि. १५:१०; कुलु. १:२६; यूहन्ना १५:५ देखें) ।

३:६ - प्रत्येक व्यक्ति के पास जिसे परमेश्वर उसके कार्य के लिए भेजते हैं यह भरोसा हो सकता है या है, कि परमेश्वर उस कार्य को करने के योग्य हैं । मत्ती २६:२८; यिर्म. ३१:३१-३४; इब्रा. ८:६-१३ में नयी वाचा पर नोट्स देखें । जो पद २-३ में है, वही ***"पत्र"*** का अर्थ यहाँ नहीं है । यहाँ इसका अर्थ भिन्न है । यहाँ ***"पत्र"*** का अर्थ वह पुरानी व्यवस्था है, जिसमें नियम और रीति विधियाँ है । इसलिए कोई उसे पूरी तरह से पूरा नहीं कर सकता था, इसलिए इससे मौत उत्पन्न होती थी । इसलिए यह मृत्यु मनुष्य को मृत्यु का दोषी ठहराती थी (रोमि. ७:६-११; गल. ३:१०; रोमि. ३:१६,२०; ४:१५; ५:२०; ८:३ आदि देखें) । किन्तु नयी वाचा परमेश्वर की आत्मा से जीवन लाती है (रोमि. ७:६; ८:२-४,११; यूहन्ना ३:५-८) ।

३:७ - ***"मूसा का चेहरा"*** - निर्ग. ३४:२६-३५ देखें ।

८,९ भी जाता था, इस्राएली उसके मुंह को देख नहीं सकते थे । **तो** आत्मा की वाचा और तेजोमय क्यों न होगी ? **क्योंकि** जब
१० दोषी ठहरानेवाली वाचा तेजोमय थी, तो धर्मी ठहरानेवाली वाचा भी तेजोमय क्यों न होगी ? **और** जो तेजोमय था, वह भी उस तेज
११ के कारण जो उस से बढ़कर तेजोमय था, कुछ तेजोमय न ठहरा । **क्योंकि** जब वह जो घटता जाता था तेजोमय था, तो वह जो
१२,१३ स्थिर रहेगा, और भी तेजोमय क्यों न होगा ? **इसलिए** ऐसी आशा रखकर हम साहस के साथ बोलते हैं । **और** मूसा की तरह
१४ नहीं, जिस ने अपने मुंह पर परदा डाला था ताकि इस्राएली उस घटनेवाली वस्तु के अन्त को न देखें । **परन्तु** वे मतिमन्द हो गए,
क्योंकि आज तक बाइबिल के प्रथम भाग के पढ़ते समय उन के दिल और दिमाग पर परदा पड़ा रहता है; पर वह मसीह में उठ जाता है ।
१५,१६ **और** आज तक जब कभी मूसा की पुस्तक पढ़ी जाती है, तो उन के दिल और दिमाग पर परदा पड़ा रहता है । **परन्तु** जब
१७ कभी कोई मनुष्य प्रभु की ओर फिरता है तो वह परदा हटा लिया जाता है । **प्रभु** तो आत्मा हैः और जहां कहीं प्रभु का आत्मा है वहां
१८ आज़ादी है । **परन्तु** जब हम सब के बिना ढके चेहरे से प्रभु का प्रताप इस प्रकार प्रगट होता है, जिस प्रकार दर्पण में, तो
**४** प्रभु के द्वारा जो आत्मा हैं, हम उसी प्रतापी रूप में अंश अंश कर के बदलते जाते हैं । **इसलिये** जब हम पर ऐसी दया
२ हुई, कि हमें यह सेवा मिली, तो हम साहस नहीं छोड़ते । **परन्तु** हम ने लज्जा के गुप्त कामों को त्याग दिया, और न चतुराई से
चलते, और न परमेश्वर के वचन में मिलावट करते हैं, परन्तु सत्य को प्रगट करके, परमेश्वर के सामने हर एक मनुष्य के
३ विवेक में अपने आप को भला ठहराते है । **यदि** हमारे सुसमाचार पर परदा पड़ा है, तो यह नाश होनेवालों ही के लिये पड़ा है ।
४ **उन** अविश्वासियों के लिये, जिन की बुद्धि को इस संसार के ईश्वर ने अन्धा कर दिया है, ताकि मसीह जो परमेश्वर का प्रतिरूप

---

३:१२ - ***"आशा"*** रोमि. ५:२-५; ८:२३-२५ भविष्य में अद्‌भुत बातों की आशा ने पौलुस को वर्तमान में साहसी बनाया ।

३:१३ - निर्ग. ३४:२९-३५ महिमा को देखकर इस्राएलियों को डर लगा । नयी वाचा डर नहीं, किन्तु आशा साहस और आनन्द लाती है ।

३:१४-१६ - वह मूसा के चेहरे पर पड़ी हुयी ओढ़नी से आत्मिक शिक्षा निकालता है । १४ वें पद में वह उनके बारे में कह रहा है, जो तब तक पुरानी वाचा में थे-यहूदी और वे गैरयहूदी जिन्होंने यहूदी धर्म को अपनाया था । उनके मन अक्रियाशील हैं और उनके हृदयों पर पर्दा पड़ा हुआ है (पद १५) । जो कुछ वे पुराने नियम में पढ़ते हैं, उसे समझते नहीं । ४:३,४ देखें । यहूदियों से कहे गए यीशु के शब्दों से जो यूहन्ना ५:३९,४०,४६,४७ आदि में हैं, उनसे तुलना करें । केवल मसीह अन्धकार और गलतफहमी का पर्दा हटा सकते हैं और लोगों को सत्य जानने और परमेश्वर को जानने में मदद कर सकते हैं (पद १४,१६; मत्ती ११:२७; यूहन्ना ८:१२,३१,३२; १४:६) ।

३:१७ - जिस प्रकार से यीशु और परमेश्वर का आत्मा एक हैं, उसी तरह पिता और पुत्र एक हैं (यूहन्ना १०:३०, १४:९) । परमेश्वर के आत्मा को रोमि. ८:९ में मसीह का आत्मा कहा गया है । मत्ती ३:१६,१७ आदि में त्रिएकत्व पर नोट्स देखें ।

***"आज़ादी"*** - परमेश्वर का आत्मा अनेक प्रकार की आज़ादी देता है : व्यवस्था से (रोमि. ७:४,६; गल. ५:१८), डर से (रोमि. ८:१५), पाप से (रोमि. ६:१४,१८) । यूहन्ना ८:३६ से तुलना करें ।

३:१८ - ***"प्रगट होता है"*** - मसीह में सभी विश्वासी परमेश्वर की कुछ महिमा को देखते हैं (४:६) । उनके पास कुछ आत्मिक समझ है । इस सम्बन्ध में कुछ ज्ञान है, किन्तु यह सब एक खराब दर्पण में देखने के समान है । १ कुरि. १३:१२ से तुलना करें । मात्र परछाई दिखती है । वह पूरी सच्चाई नहीं, जो मसीह को आमने-सामने देखने से मिलेगी । अभी विश्वासी लोग बदलते जा रहे हैं । बाइबिल के जिस यूनानी शब्द का अनुवाद ***"बदलाव"*** हुआ है, वह यहाँ चार बार न्यू टेस्टामेंन्ट में आया है, मत्ती १७:२; मरकुस ९:२; रोमि. १२:२ । यह आन्तरिक परिवर्तन के विषय में है जो बाहर प्रगट होता है । जहाँ तक मसीह का प्रश्न है, इसका सम्बन्ध बाहरी प्रगट होने से था, जो उसके अनुरूप था जो वह भीतर था । जहाँ तक विश्वासियों का प्रश्न है यह भीतरी एवं बाहरी परिवर्तन था । पहले भीतरी फिर बाहरी ।

यह धीरे-धीरे होने वाली प्रक्रिया है - ***"महिमा से महिमा"*** । भजन. ८४:७; नीति. ४:१८ से तुलना करें । यहाँ परमेश्वर उन्हें मसीह के समान बनाता जा रहा है । अन्ततः उसके आने पर, वे लोग पूरी तरह से उसके समान हो जाएंगे । (रोमि. ८:२९; १ यूह ३:१,२) ।

यह प्रक्रिया अभी इतनी धीमी हो सकती है, कि विश्वासी यह सोच सकता है, कि कुछ हो रहा है या नहीं । किन्तु प्रत्येक परमेश्वर की सच्ची सन्तान में ऐसा है ।

## अध्याय ४

४:१ - नयी वाचा में परमेश्वर के सेवकों ने महिमा से परिपूर्ण सेवा को ग्रहण किया है । यह मूसा की सेवकाई से बड़ी है (३:९) । वे लोग दोषी ठहराने वाली व्यवस्था के सेवक नहीं है किन्तु उस अनुग्रह के, जो बचाता है । यह सेवकाई उन्होंने परमेश्वर की दया से पायी है, न कि व्यक्तिगत योग्यता के कारण (१ कुरि. १५:१०; १ तिमो. १:१३,१४). इसलिए पौलुस कहता है, कि समस्त समस्याओं के बावजूद वह निराश नहीं होगा (पद १६; १ कुरि. १५:५८; लूका १८:१ से तुलना करें) ।

४:२ - १:१२; २:१७ देखें । पौलुस अपनी खराई पर ज़ोर डालता है, क्योंकि कुछ लोग वह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे । वह यह जानता था कि यदि उन्हें उसकी प्रेरिताई पर विश्वास नहीं है, तो उससे कलीसिया की बड़ी हानि होगी ।

४:३ - ३:१४-१६ देखें । यहाँ पौलुस मात्र विश्वास न रखने वाले यहूदियों की बात नहीं करता है, किन्तु प्रत्येक राष्ट्र के अविश्वासियों के बारे में ।

४:४ - ***"इस संसार का ईश्वर"*** - इसका अर्थ है शैतान । यूहन्ना १२:३१; १६:११ से तुलना करें । उसे इस संसार का ईश्वर कहा गया है क्योंकि वह उपासना चाहता है और उसे मिलती भी है । इसलिए भी कि वह अन्धकार के दायरे पर राज्य करता है (इफि. ६:१२) ।

५ हैं, उनके तेजोमय सुसमाचार का प्रकाश उन पर चमके । **क्योंकि** हम अपना नहीं परन्तु मसीह यीशु का संदेश देते हैं, कि
६ वह प्रभु हैं; और अपने विषय में यह कहते हैं, कि हम यीशु के कारण तुम्हारे सेवक हैं । **इसलिये** कि परमेश्वर ही हैं, जिन्होंने
कहा, कि अन्धकार में से ज्योति चमके; और वही हमारे हृदयों में चमके, कि परमेश्वर की महिमा की पहिचान की ज्योति
७ यीशु मसीह के चेहरे से प्रकाशमान हो । **परन्तु** हमारे पास यह खज़ाना मिट्टी के बरतनों में रखा है, कि यह असीम शक्ति हमारी
८ ओर से नहीं, वरन् परमेश्वर ही की ओर से ठहरे । **हम** चारों ओर से क्लेश तो भोगते हैं, पर संकट में नहीं पड़ते; निरुपाय
९,१० तो हैं, पर निराश नहीं होते । **सताए** तो जाते हैं; पर त्यागे नहीं जाते; गिराए तो जाते हैं, पर नाश नहीं होते । **हम** यीशु की मौत
११ को अपनी देह में हर समय लिए फिरते हैं; कि यीशु का जीवन भी हमारी देह में प्रगट हो । **क्योंकि** हम जीते जी हमेशा
१२ यीशु के कारण मौत के हाथ में सौंपे जाते हैं कि यीशु का जीवन भी हमारे मरणशील शरीर में प्रगट हो । **इसलिए** मौत तो हम पर असर

---

१ इतिहास २१:१; मत्ती ४:१-१०; यूहन्ना ८:४४ में शैतान पर नोट्स देखें ।

***"बुद्धि को इस संसार के ईश्वर ने अन्धा कर दिया है"*** - का अर्थ है शैतान लोगों को परमेश्वर के सत्य से अनजान रखना माँगता है । वह उन्हें आत्मिक दृष्टि नहीं पाने देता । हाँ, यह उनके सहयोग ही से संभव है (यूहन्ना ३:१६,२०; २ थिस्सु. २:१०,११)

***"मसीह का महान सुसमाचार"*** - सुसमाचार परमेश्वर की महिमा को प्रगट करता है । उसके अभिषिक्त यीशु मसीह को भी (यूहन्ना १२:२३) ।

***"परमेश्वर का प्रतिरूप"*** - इब्रा. १:३; फिलि. २:६; कुलु. १:१५; २:६; यूहन्ना १:१४,१८; १२:४५; १४:६ । वह अदृश्य परमेश्वर का दृश्य रूप है ।

***"उन पर न चमके"*** - इसका अनुवाद हो सकता है ***"उनके द्वारा देखा न जा सके"***

४:५ - इस पत्र में पौलुस अपनी प्रेरिताई पद के ऊपर होने वाले आक्रमणों के विरोध में बचाव पक्ष को रखता है । किन्तु यह सब उन सब की भलाई के लिए था । (१:१२-२४ पर नोट्स देखें) उसने स्वयं को उद्धार का एक मार्ग नहीं बताया । उसने सुसमाचार का अविष्कार नहीं किया था । वह स्वयं को बड़ा नहीं समझता था । वह स्वयं को दूसरों के लिए गुलाम समझता था (१ कुरि. ३:५-७; ९:१९-२३) । जो उसके स्वयं से बढ़कर था यानि कि मसीह, उसके बारे में उसका संदेश था । उसने यह घोषणा की, कि वह स्वर्ग और पृथ्वी के मालिक हैं । लूका २:११; रोमि. १०:६; १ कुरि. ८:६; १२:३; प्रेरित. २:३६; फिलि. २:१०,११ ।

४:६ भौतिक प्रकाश की सृष्टि (उत्पत्ति १:१-३) से मसीह के द्वारा विश्वासियों में चमकने वाली आत्मिक ज्योति से पौलुस तुलना करता है । परमेश्वर उनकी समझ की आँखो को खोलता है ताकि सत्य का ज्ञान प्राप्त कर सकें । इसके पहले, जैसा मन दूसरों का है, उनका मन भी अन्धकार और बर्बादी से भरा हुआ था । इफि. १:१८; प्रेरित. २६:१८; यूहन्ना ८:१२; मत्ती ६:२२,२३,११:२७; १६:१७; १ कुरि. २:११-१६ ।

परमेश्वर जिस ज्ञान को देते हैं, उस पर ध्यान दें । इस शिक्षा का सम्बन्ध गलत शिक्षा से कि मनुष्य यह 'जान' सकता है कि वह स्वयं ईश्वर है, कुछ लेना देना नहीं है । वह शिक्षा शैतान का भयंकर धोखा हैं । मनुष्य परमेश्वर नहीं है; वह परमेश्वर नहीं बन सकता है । यदि वे ऐसा सोचते हैं, तो बड़ी गलती में पड़े हैं । सच्चा ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ है कि मनुष्य यह समझता है कि मसीह में परमेश्वर की महिमा है (इब्रा १:३), मनुष्य में नहीं । दमिश्क के रास्ते पर जाते समय पौलुस को यह अनुभव हुआ था प्रेरित ९:३-६ । हममें से अधिक लोगों को अचानक मिलने वाला ऐसा अजीब अनुभव नहीं है । प्रत्येक विश्वासी ने आत्मिक दृष्टि और ज्योति पायी है और ज्योति की सन्तान है (यूहन्ना १२:३६; इफि. ५:८; १ थिस्स. ५:५) ।

***"चेहरे से"*** - ३:१३ से तुलना करें । पुरानी वाचा की महिमा जो मूसा के चेहरे से प्रगट होती थी, समाप्त होती जा रही थी । नयी वाचा के संस्थापक यीशु मसीह के चेहरे से यह कभी समाप्त नहीं होगी ।

४:७ - ***"खज़ाना"*** - मसीह में परमेश्वर की महिमा का ज्ञान सबसे बड़ा खज़ाना है । भजन. १९:१०; ११९:७२,१२७; नीति. २:१-५ । खज़ाने से पौलुस का अर्थ सुसमाचार की वह सेवकाई भी हो सकती है जो उसे सौंपी गयी थी । उसकी दृष्टि में यह भी बड़ी बात थी (इफि. ३:८) ।

***"मिट्टी के बरतनों"*** - इसका अर्थ है हमारा निर्बल स्वभाव, शरीर, प्राण और आत्मा । यह सब मिट्टी के बर्तन के समान है । खज़ाना तो कीमती है, किन्तु रखने के बर्तन बहुत कमज़ोर और बिना आर्कषण के हैं । यह दिखाता है, कि इसी कीमती खज़ाने को दूसरों को देना या नयी वाचा की सेवकाई करना (३:६) परमेश्वर की सामर्थ पर निर्भर है । तुलना करें प्रेरित. १:४,५,८ ।

४:८-१२ - इन पदों में पौलुस इन ***"मिट्टी के बर्तनों"*** - की निर्बलता को दिखाता है जो ***"क्लेश में", "परेशानी में", "सताव में"*** से होकर जाते हैं । लेकिन वह कार्य करने वाली परमेश्वर की सामर्थ को भी दिखाता है । यदि परमेश्वर की सामर्थ इन मिट्टी के बर्तनों में कार्यरत नहीं थी, तो वे कुछ बड़ा कार्य नहीं कर सकते थे । वे तो नाश भी हो सकते थे ।

४:१०-१२ - ***"मृत्यु"*** - १:८,९ देखें । जो पौलुस ने सहा, वही यीशु ने भी सहा था । पौलुस ने ***"यीशु के लिए"*** पद ११, जो कुछ सहा - वास्तव में यह इसमें मसीह के लिए मरना था । पौलुस के लिए इसका अर्थ था निरन्तर खतरों और समस्याओं को झेलना (११:२३-२७) । स्वयं के लिए मरना, मत्ती १०:३८,३९ से तुलना करें (लूका ९:२३) और केवल यीशु मसीह के लिए जीना (गल. २:२०) । व्यक्तिगत योजनाएँ और आकांक्षाएँ, उसके राज्य की रूचि-अरूचि, आराम, आमोद प्रमोद - इनका सबका उसके हृदय में कोई स्थान नहीं था । इसी प्रकार यीशु के जीवन में इन सब का स्थान नहीं था । पौलुस ने देखा कि यह जीने का तरीका, आत्मिक जीवन और उसमें यीशु का कार्य करने वाला जीवन था (पद ११) । इसका अर्थ यह भी था कि जिस प्रकार से कुरिन्थि के विश्वासियों में जीवन आया, दूसरों को भी प्राप्त हो (पद १२) यहां एक सत्य सिद्धान्त है - 'जो लोग चाहते हैं कि वे दूसरों

१३ डालती है और जीवन तुम पर। **और** इसलिये कि हम में वही विश्वास की आत्मा है, 'जिस के विषय में लिखा है, कि मैं ने विश्वास
१४ किया, इसलिये मैं बोला' सो हम भी विश्वास करते हैं, इसीलिये बोलते हैं। **क्योंकि** हम जानते हैं, कि जिन्होने प्रभु यीशु को जिलाया;
१५ वही हमें भी यीशु में भागी जानकर जिलाएंगे, और तुम्हारे साथ अपने सामने उपस्थित करेंगे। **क्योंकि** सब वस्तुएं तुम्हारे लिये हैं,
१६ ताकि अनुग्रह बहुतों के द्वारा अधिक होकर परमेश्वर के सम्मान के लिये धन्यवाद भी बढ़ाए। **इसलिये** हम हिम्मत नहीं छोड़ते; हालांकि हमारा
१७ बाहरी मनुष्यत्व नाश भी होता जाता है, तौभी हमारा भीतरी मनुष्यत्व दिन प्रतिदिन नया होता जाता है। **क्योंकि** हमारा थोड़े समय
१८ का हल्का सा क्लेश हमारे लिये बहुत ही महत्वपूर्ण और अनन्त सम्मान उत्पन्न करता जाता है। **और** हम तो देखी हुई वस्तुओं को
नही परन्तु अनदेखी वस्तुओं को देखते रहते हैं, क्योंकि देखी हुई वस्तुएं थोड़े ही दिन की हैं, परन्तु अनदेखी वस्तुएं सदा बनी
**५** रहती हैं। **क्योंकि** हम जानते हैं, कि जब हमारा पृथ्वी पर का तम्बू सरीखा घर गिराया जाएगा तो हमें परमेश्वर की ओर
२ से स्वर्ग पर एक ऐसा भवन मिलेगा, जो हाथों से बना हुआ घर नहीं, परन्तु चिरस्थाई है। **इस में** तो हम कहरते, और बड़ी लालसा

---

के लिए आत्मिक जीवन के सम्बन्ध में एक माध्यम हों, वे स्वयं अपने जीवन में मरने का अनुभव कर सकें। यूहन्ना १२:२४-२६ देखें। जो इसके लिए तैयार नहीं हैं, वे अपने जीवन को सफल समझ सकते हैं, किन्तु परमेश्वर की दृष्टि में यह सफलता नहीं है।

४:१३-१४ - भजन. ११६:१० तमाम कठिनाईयों और विरोध के बावजूद कौन सी ऐसी बात थी, जिसके फलस्वरूप पौलुस मसीह की सेवा में लगा रहा। उसने परमेश्वर पर भरोसा किया और शान्त नहीं रहा। यह आशीषित भविष्य के विषय में निश्चिय था। भविष्य में विश्वासियों का जी उठना एक बड़ी आशा थी, जिससे वह आगे बढ़ता रहा (रोमि. ८:२३-२५; १ कुरि. १५:४६-५८)।

४:१५ - पौलुस के सभी दुःख और अनुभव दूसरों की भलाई के लिए थे। यही वह चाहता भी था - कुलु. १:२४; १ कुरि. १०:३३; २ तीमु. २:१०। परमेश्वर के जिस सेवक का यह रवैया होगा, वह उसके लिए और दूसरों के लिए लाभदायक ही होगा। पौलुस के इस रवैये को देखें, कि परमेश्वर को धन्यवाद मिले - (१:११;९:११-१३)।

४:१६ - इस अध्याय के कुछ विषय

***"हिम्मत नहीं छोड़ते'*** - पद १

***नाश भी होता*** - पद ७-१२

***नया होता जाता*** - पद १०, ११ प्रतिदिन वह मृत्यु का साम्हना करता था (१ कुरि. १५:३१). किन्तु परमेश्वर ने भी उसे प्रतिदिन जीवन दिया।

४:१७ - ***"क्लेश"*** - उसकी समस्याओं और कठिनाईयों पर ध्यान दें - पद ८-१०; १:८; ११:२३-२७। पौलुस उन्हें हल्का सा कहता है। उसका कहने का मतलब यह है कि भविष्य के ईनाम की तुलना में यह कुछ मायने नहीं रखता। हम अपनी छोटी छोटी समस्याओं के विषय क्या कहें ? क्या हम अपने ऊपर तरस खाएं और शिकायत करें ? यदि हमने ऊपरी बातों को सीखा है, जिन्हें पौलुस ने सीखा था तब नहीं।

***"पल भर का"*** पौलुस की - समस्याएँ उसके परिवर्तन के बाद आरम्भ हुयीं और लम्बे समय या जीवन के अन्त तक बनी रहीं। किन्तु पौलुस के दृष्टिकोण से, अनन्तकाल की तुलना में वे सब क्षण भर की थीं। हमें भी ऐसा रवैया अपनाना चाहिए।

***"हमारे लिए... उत्पन्न करता जाता है"*** - जो लोग मसीह के लिए दुःख उठाते हैं, उनके लिए वह अनन्त काल के लिए भलाई उत्पन्न करती हैं।

विश्वासी जिस आदर, सम्मान को प्राप्त करने वाले हैं, उनको प्राप्त करने में वे क्लेश सहायक हैं। रोमि. ८:१७,१८,२८ से तुलना करें।

४:१८ - यही कारण था, जिसकी वजह से जो कुछ हुआ, पौलुस उसे सह सका। उसकी दृष्टि में सभी कठिनाईयाँ हल्की फुल्की थीं। हम अनदेखी बातों पर ध्यान कैसे लगा सकते हैं ? यह परमेश्वर द्वारा प्राप्त आत्मिक समझ पर निर्भर है (पद ६)। यह विश्वास द्वारा स्वीकार करना है कि न दिखने वाली परमेश्वर की अनन्तकालिक बातें वास्तविक हैं (इब्रा. ११:१)। पद ५:७ में वह उन बातों को दूसरे शब्दों में कहता है। हम अपनी शारीरिक आँखों से संसार, अपनी समस्याओं और कठिनाईयों को देखते हैं। अपने विश्वास की आँखों और आत्मिक समझ से हम मसीह के चेहरे में देख सकते हैं (४:६) और अनन्तकाल में भी। अदृश्य एवं अनन्त बातों पर अपनी आँखें लगाने से हमारे रोज़मर्रा के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा।

## अध्याय ५

५:१-१० - जिन अदृश्य अनन्त बातों के विषय में पौलुस ने बताया है, उनका वर्णन वह यहाँ करता है - अनन्त घर १-४, सदैव प्रभु के साथ रहना (पद ८), अन्तिम न्याय और पुरस्कार (पद १०)। इन सभी पर उसने अपने आँखे स्थिर कर रखी थीं।

५:१ - ***"हम जानते हैं"*** पौलुस जो कहता है वह मात्र कल्पना नहीं है। यह वह ज्ञान है जो परमेश्वर के सत्य के प्रकाशन पर टिका हुआ है। ***"पृथ्वी का घर"*** का मतलब है हमारे भौतिक शरीर (पद ४)। वे मरेंगे - यदि मृत्यु, मसीह के आगमन से पहले आती है (१ कुरि. १५:५१,५२).

***"परमेश्वर की ओर से स्वर्ग पर घर"*** जो सदाकाल का है, का क्या अर्थ है ? इसके अर्थ के सम्बन्ध में असहमति है। शायद वह यूहन्ना १४:२ के ***"पिता के घर"*** की ओर संकेत कर रहा था। इब्रा. ११:१०;१३:१४; प्रका. २१:१०-२७; लूका १६:९ भी देखें। या पौलुस देह के जी उठने की बात कर रहा जो मसीह लोग मसीह के आने पर प्राप्त करेंगे (१ कुरि. १५:३५-५३)। यदि तम्बू, हमारी वर्तमान की देह है, घर का अर्थ, भविष्य में मिलने वाली देह होगी जो तम्बू के साथ अस्थायी नहीं होगी।

५:२ - ***"कहरते"*** - रोमि. ८:२३ देखे जहाँ ***"हमारी देह से छूटना कहरना है"***। यहाँ भी वही अर्थ हो सकता है। ***"पहिनना"*** किसी व्यक्ति या व्यक्ति की आत्मा के ओढ़ने को दिखाता है, न कि एक शहर को जो स्वर्ग में रहने का एक अनन्त स्थान है।

३,४ रखते हैं; कि अपने स्वर्गीय घर को पहिन लें । **कि** इस के पहिनने से हम नंगे न पाए जाएं । **और** हम इस डेरे में रहते हुए
बोझ से दबे कहरते रहते हैं; क्योंकि हम उतारना नहीं, वरन् और पहिनना चाहते हैं, ताकि वह जो मरणशील है जीवन में डूब जाए ।
५,६ **और** जिस ने हमें इसी बात के लिये तैयार किया है वह परमेश्वर हैं, जिन्होंने हमें बयाने में आत्मा भी दिया है । **इसलिए** हम सदा
७ हिम्मत बान्धे रहते हैं और यह जानते हैं; कि जब तक हम देह में रहते हैं, तब तक प्रभु से अलग हैं । **क्योंकि** हम रूप को देखकर
८ नहीं, पर विश्वास से चलते हैं । **इसलिए** हम हिम्मत बान्धे रहते हैं, और देह से अलग होकर प्रभु के साथ रहना और भी उत्तम
९,१० समझते हैं । **इस** कारण हमारे मन की उमंग यह है, कि चाहे साथ रहें, चाहे अलग रहें पर हम उन्हें भाते रहें । **क्योंकि** अवश्य
है, कि हम सब का हाल मसीह के सिंहासन के सामने खुल जाए, कि हर एक व्यक्ति अपने अपने भले बुरे कामों का बदला जो
११ उस ने देह के द्वारा किए हों, पाए । **इसलिए** प्रभु का भय मानकर हम लोगों को समझाते हैं और परमेश्वर पर हमारा हाल प्रगट है; और
१२ मेरी आशा यह है, कि तुम्हारे विवेक पर भी प्रगट हुआ होगा । **हम** फिर भी अपनी बड़ाई तुम्हारे साम्हने नहीं करते वरन् हम अपने
विषय में तुम्हें खुश होने का अवसर देते हैं, कि तुम उन्हें उत्तर दे सको, जो मन पर नहीं, वरन् दिखावटी बातों पर प्रसन्न होते हैं ।
१३,१४ **यदि** हम आश्चर्य चकित हैं, तो परमेश्वर के लिये; और यदि अपने आप में शालीन हैं, तो तुम्हारे लिये हैं । **क्योंकि** मसीह

---

५:३ - यहाँ ***"नंगे"*** का अर्थ आत्मा हो सकती है, जो बिना देह के होती है ।

५:४ - इसका अर्थ यह संभव है कि विश्वासी इसलिए नहीं कहरते हैं कि वे अपनी देह से छूटना चाहते हैं, किन्तु इसलिए कि नयी देह चाहते हैं । ***"पहिनने"*** और ***"मरणशील है जीवन में डूब जाए,"*** पुनः जीवित हुये शरीर के बारे में पौलुस की भाषा है जो १ कुरि. १५:५४ में है ।

५:५ - विश्वासी परमेश्वर के हाथ के बनाए हुए हैं, नयी सृष्टि हैं (पद १७; इफि. २:१०) । उन्होने हमें स्वर्गिक ***"घर"*** से ढांकने के लिए बनाया है (पद २) - एक रहने का घर जो स्वर्ग में है । यूहन्ना ६:३९-४० देखें ।

***"बयाने"*** - या जमापूंजी या ***"गारण्टी"*** । इसका अर्थ स्पष्ट है - खरीदी मूल्य का थोड़ा भाग आरम्भ में दिया जाता है, जो कि पूरी रकम का एक भाग होता है । १:२२ और इफि. १:१४ देखें । प्रत्येक विश्वासी को परमेश्वर यह देते हैं जो यह दिखाता है कि वह सभी प्रतिज्ञाओं को पूरा करेंगे और भविष्य में मीरास का अधिकारी बनाएंगे । हमें यह सोचना भी नहीं चाहिए कि परमेश्वर अपने मन को बदलेंगे और प्रतिज्ञा को तोड़ेंगे । क्योंकि उन्होंने अपनी आत्मा दे दी है, वह प्रतिज्ञा की हुयी भविष्य की आशीषों से हमको वंचित नहीं रखेंगे ।

५:६-८ - परमेश्वर द्वारा दी गयी सच्चाई के ऊपर पौलुस का ज्ञान और भरोसा आधारित है । १ कुरि २:६-१६ से तुलना करें । इन पदों में वह यह नहीं कहता है, कि हमारे पृथ्वी के इस जीवन में वह हमारे साथ नहीं हैं । वह सभी विश्वासियों के साथ हैं - १३:५; मत्ती २८:२०; यूहन्ना १७:२०-२३ । किन्तु विश्वासी अभी स्वर्ग में मसीह की उपस्थिति में नहीं हैं । पौलुस कहता है कि मरने पर वे उसकी उपस्थिति में जाते हैं । फिलि. १:२३,२४ भी देखें । लूका २३:४३; यूहन्ना १७:२४ से तुलना करें । ५:७ ४:१८ देखें ।

५:९ - इसलिए कि विश्वासी मसीह की उपस्थिति में प्रवेश करने वाले हैं और उसके साथ रहेंगे, इससे उनके जीवन जीने के तरीके पर प्रभाव पड़ना चाहिए । जो लोग मसीह को प्रसन्न करना चाहेंगे, वे स्वयं को खुश नहीं करेंगे । वे मसीह के आदर-सम्मान और दूसरों की भलाई के लिए जीएंगे । तुलना करें पद १५; १ कुरि. ६:१९-२३; १०:३१ । जो लोग मसीह को प्रसन्न नहीं करना चाहते, वे परमेश्वर के सच्चे सेवक नहीं है ।

५:१० - रोमि. १४:१०-१२; २:६; १ कुरि. ३:१३-१५ जिन कार्यो के लिए पुरुस्कार मिलना चाहिए, विश्वासियों को मिलेगा, जो मसीह के लायक नहीं है, पुरुस्कार नहीं मिलेगा ।

५:११ - ***"प्रभु का भय"*** - इसका अर्थ आदरयुक्त भय से है । रोमि. ३:१८; उत्पत्ति २०:११; भजन. ३४:११-१४; १११:१०; नीति.१:७ । उसकी सामर्थी सेवकाई के पीछे यह प्रेरणादायक बात थी ।

५:१२ - १:१२-१४; ३:१-३ इन पदों में व यह फिर से कुरिन्थ में अपने विरोधियों की ओर संकेत करता है (११:१३-१५) । वह चाहता था कि विश्वासी उसमें गर्व करें । यह कि उसे सच्चा प्रेरित और परमेश्वर के वचन का शिक्षक समझें । तभी वे उन झूठे शिक्षकों को उत्तर दे सकते थे, जो केवल बाहरी बातों में घमण्ड किया करते थे ।

५:१३ - क्या उसके विरोधियों ने उसे पागल समझा ? क्या विश्वासियों ने यह समझा कि पौलुस असामान्य व्यवहार करता था? (मरकुस ३:२१; प्रेरित. २६:२४; १ कुरि. ४:१०) । वह चाहता है कि वह जो कुछ भी था उसका व्यवहार उन्हें जैसा भी लगा, वह सभी उसके स्वयं के लिए नहीं किन्तु उनके लिए अच्छा था । यूहन्ना २:१७ से तुलना करें ।

५:१४ - पद ११ में जो सेवकाई का उद्देश्य है, उससे बढ़कर यहाँ है । परमेश्वर और दूसरों के लिए सब कुछ करना कैसे संभव है? मसीह का प्रेम और उसके हृदय में इसका अनुभव (रोमि. ५:५) । एक ज़ोर लगाने वाला बल था, जो उसे परमेश्वर के कार्य के लिए प्रेरित करता रहा, तुलना करें लूका १२:५० । जैसा सभी विश्वासियों में, उसी प्रकार उसमें मसीह था । उसी प्रकार मसीह का प्रेम उसमें था । इसलिए कि वह पूरी तरह से मसीह के प्रति समर्पित था, मसीह के प्यार के प्रति भी समर्पित था । यहाँ मसीह का प्रेम का अर्थ मसीह के लिए प्रेम नहीं किन्तु सभी लोगों के लिए मसीह का प्रेम है ।

१ यूहन्ना ४:१०,१९ से तुलना करें । गल. २:२० देखें । ***"विवश"*** इस यूनानी शब्द का अर्थ है ***"पकड़े रहना", "बनाए रखना" "साथ में बान्धना" "ज़ोर से दबाना" गिरपत में लेना", "दबाव डालना"*** । निस्सन्देह मसीह का प्रेम यह सब कर सकता है ।

***"एक सब के लिए मरे"*** - मसीह सभी के लिए मरे । लोगों के पाप के लिए उन्हें मरना आवश्यक था । वह उनके स्थान पर मरे (पद १९, यूहन्ना १:२९; ३:१६; १ तिमो. २:६, इब्रा. २:९) । १ पत. ३:१८; १ यूहन्ना २:२ । इस तरह परमेश्वर की दृष्टि में ***"सभी मर गए"*** - जब मसीह मरे । मानव जाति के एवज़ी और प्रतिनिधि के साथ जो कुछ हुआ वह सब मानो सारी मानव

१५ का प्रेम हमें विवश कर देता है; इसलिये कि हम यह समझते हैं, कि जब एक सब के लिये मरे तो सब मर गए । **वह** इस लिये
सब के लिये मरे कि जो जीवित हैं, वे आगे को अपने लिये न जिएं परन्तु यीशु के लिये जो उन के लिये मरे और फिर जी
१६ उठे । **इसलिए** अब से हम किसी को मात्र मनुष्य के रूप में नहीं देखेंगे और यदि हम ने मसीह को भी वैसा जाना था, तौभी अब से
१७ उन को ऐसा नहीं जानेंगे । **इसलिए** यदि कोई मसीह में है तो वह नई सृष्टि हैः पुरानी बातें बीत गई हैं; देखो, वे सब नई हो गईं ।
१८ **और** सब बातें परमेश्वर की ओर से हैं जिन्होंने मसीह के द्वारा अपने साथ हमारा मेल मिलाप कर लिया, और मेल मिलाप की
१९ सेवा हमें सौंप दी है । **अर्थात्** परमेश्वर ने मसीह में होकर अपने साथ संसार का मेल मिलाप कर लिया, और उन के अपराधों का
२० दोष उन पर नहीं लगाया और उन्होंने मेल मिलाप का वचन हमें सौंप दिया । **इसलिए** हम मसीह के राजदूत हैंः मानो परमेश्वर हमारे

---

जाति के साथ हुआ । इसका अर्थ यह नहीं कि सभी लोग उद्धार पा जाएंगे । लोग मात्र इसलिए बच नहीं जाएंगे क्योंकि मसीह उनके लिए मर गए - उन्हें परमेश्वर के साथ मेल करना पड़ेगा (पद २०) । उन्हें मन परिवर्तन करके मसीह को अपनाना होगा (लूका १३:३; यूहन्ना ३:३६; ८:२४; प्रेरित. १७:३०) । उन्हें उनकी मृत्यु में दफनाए जाने की आवश्यकता है (रोमि. ६:३) । नहीं तो किसी के लिए उद्धार नहीं ।

मसीह की मृत्यु से यह संभव है, कि परमेश्वर सभी लोगों को क्षमा करें । किन्तु यह तभी संभव है जब क्षमा के लिए वे परमेश्वर की ओर मुड़ें और मसीह के द्वारा उद्धार पाएँ । ***"सभी के लिए मरे"*** का एक और संभावित अर्थ है वह यह कि चुने हुए (यूहन्ना ६:३७; १७:६), जिन्हें परमेश्वर ने उन्हें दिया था, उनके लिए मसीह मरे । अधिकांश बाईबिल के जानकार इस मत से सहमत हैं किन्तु हम नहीं । चाहे हमारा मत कुछ क्यों न हो, एक बात निश्चित है, मसीह की मृत्यु के लाभ उनके लिए हैं जो उस पर विश्वास करते हैं, सभी के लिए नहीं ।

५:१५ - यहाँ मसीह की मृत्यु का एक बड़ा उद्देश्य था - वह यह कि लोगों को उनके स्वार्थी और स्वकेन्द्रित जीवन शैली से आज़ाद करें और उन्हें मसीह में केन्द्रित बनाए । रोमि. १४:६ भी देखें ! यह हम पौलुस के जीवन में देखते हैं (पद ६) । क्या यही परिवर्तन हमारे भीतर हुआ? क्या हमारा विश्वास खरा है? उसकी मृत्यु में बपतिस्मा लेने का अर्थ, उसके पुनरूत्थान में बपतिस्मा लेना भी है । यह एक जीवन की नयी शैली को दिखाता है (पद १७; रोमि. ६:४-७) । अपने लिए जीना विनाश लाता है । मसीह के लिए जीने में पूरी आशीष है । मत्ती १०:३७-३९; लूका ६:२३; १४:२६ ।

५:१६ - मसीह का विश्वासी बनने से पहले, पौलुस बिना आत्मिक समझ के था । वह मसीह को और दूसरों को बाहरी बातों से परखता था । यूहन्ना ८:१५ से तुलना करें । मसीह की मृत्यु का अर्थ जानने से उसका बाहरी देखने का दृष्टिकोण बदल गया । इसके परिणामस्वरूप, वह सब कुछ मसीह के सन्दर्भ में देखने लगा ।

५:१७ - ***"इसलिए"*** शब्द इससे पहले के पदों से जोड़ता है । मसीह में एक व्यक्ति 'नयी सृष्टि' है । इसलिए यह स्वाभाविक है कि उसका यीशु मसीह, दूसरों और स्वयं के प्रति दृष्टिकोण पहले के समान न होगा ।

***"मसीह में"*** - यूहन्ना १७:२०,२१; रोमि. ६:३,५; ८:१; १ कुरि. १:१; १२:१२,१३; इफि. १:१,४.

***"एक नयी सृष्टि"*** - आत्मिक जन्म की ओर संकेत है (यूहन्ना १:१२,१३; ३:३-८; तीतुस ३:५; १ पत. १:२३) । जिन लोगों ने यह अनुभव किया है, वे वैसे ही नहीं रह सकते । स्वयं के लिए जीवित रहना और दूसरों को एवं मसीह को सांसारिक दृष्टिकोण से देखना चला जाता है । पुराने विचार, नियत और सिद्धान्त समाप्त हो जाते हैं । नया सत्य, इसके आधार पर जीवित रहना, नयी इच्छाएँ और नयी प्रवृत्तियाँ हृदय में आती हैं । यह मात्र पौलुस जैसे लोगों के बारे में सत्य नहीं है, किन्तु प्रत्येक के लिए जो मसीह में है ।

५:१८ ***"परमेश्वर का"*** - यूहन्ना १:१३, इफि. २:१०; ४:२४; याकूब १:१८ । लोग नयी शुरुआत कर सकते हैं, किन्तु वे नया जीवन आरम्भ नहीं कर सकते है, यह असंभव है, जैसे वे किसी की सृष्टि नहीं कर सकते (उत्प १:१) ।

***"मेल मिलाप"*** - का अर्थ है शत्रुओं को मित्र बना लेना या अलगाव एवं शत्रुता के कारण को हटाना । पाप ने लोगों को परमेश्वर का शत्रु बनाया है (रोमि. ५:१०; कुलु. १:२१) । उनके पाप के कारण परमेश्वर का क्रोध उन पर था (रोमि. १:१८, गिनती २५:३; भजन. ९०:७-११; यूहन्ना ३:३६ पर परमेश्वर के क्रोध पर नोट्स देखें) । स्वयं से मेल कराने के लिए परमेश्वर को उन बातों से निबटना पड़ा, जिनसे परमेश्वर को क्रोध आया था और जिसके कारण उनसे वे अलग हो गए थे । ऐसा परमेश्वर ने अपने बेटे को संसार में बलिदान के रूप में भेजने के द्वारा किया (पद १४ के पद देखें) । ***"मसीह के द्वारा"*** परमेश्वर ने लोगों से मेल किया । इफि. २:१६; कुलु. १:२०,२२ । ऐसा करने के बाद वह अपने सेवकों को शुभ संदेश देने के लिए भेजता है । हमको ***"मेल करवाने की सेवकाई"*** देने का अर्थ यही है ।

५:१९ - यह मेलमिलाप का वह संदेश है, जिसे परमेश्वर ने अपने सेवकों को दिया है ताकि वे उसकी घोषणा करें । १८ पद में "पौलुस कहता है, परमेश्वर ने हमारे साथ मेल कर लिया । अब यह संसार के साथ मेल करवाने की बात करता है । यह बीते हुए समय में हुआ था । मसीह की मृत्यु के द्वारा, परमेश्वर ने मेल हो जाने की नीव रखी, ताकि जो चाहे इसका लाभ उठाए । परमेश्वर ने उनके पापों की ओर ध्यान नहीं दिया । उन्होंने मानवजाति के पापों को उठाकर मसीह के ऊपर रख दिया (पद २१; यूहन्ना १:२९; यशा. ५३:५,६) । इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक उद्धार पा चुका । इसका अर्थ है कि प्रत्येक के उद्धार के लिए एक मार्ग खुल चुका है । उद्धार पाने के लिए लोगों को वह सब ग्रहण करना चाहिए जो परमेश्वर ने उनके लिए किया है और मसीह पर भरोसा करना चाहिए । यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो नाश हो जाएंगे (यूहन्ना ३:१६,३६) ।

५:२० - मेल मिलाप के कार्य में परमेश्वर का कार्य दोहरा है - अपने पुत्र को उन्होंने हमारे पापों के लिए मरने के हेतु भेजा । वह अपने सेवकों को सभी स्थानों में भेजता है ताकि इस सत्य को फैलाएँ । लोगों को भी कुछ करना है - वह है मसीह में उपलब्ध मेल को प्राप्त करना । इसका अर्थ है, मन परिवर्तन और मसीह के संदेश पर भरोसा करना । पौलुस (और वह भी जिसे परमेश्वर शुभ संदेश सुनाने के लिए भेजते हैं) मसीह के ***"राजदूत"*** हैं ।

२१ द्वारा समझाते हैं: हम मसीह की ओर से निवेदन करते हैं, कि परमेश्वर के साथ मेल मिलाप कर लो । **जो** पाप से अज्ञात थे, उन्हीं
**६** को उन्होंने हमारे लिये पाप ठहराया, कि हम उन में होकर परमेश्वर की धार्मिकता बन जाएं । **और** हम जो उनके सहकर्मी हैं यह
२ भी समझाते हैं, कि परमेश्वर का अनुग्रह जो तुम पर हुआ, बेकार न जाने दो । **क्योंकि** वह तो कहते हैं, 'अपनी प्रसन्नता के समय
मैं ने तेरी सुन ली, और मुक्ति के दिन मैं ने तेरी सहायता की ।' देखो यही वह प्रसन्नता का समय है; देखो, यही वे दिन हैं, जब
३ मुक्ति मिल सकती है । **हम** किसी बात में ठोकर खाने का कोई भी अवसर नहीं देते, कि हमारी सेवा पर कोई दोष आए ।
४ **परन्तु** हर बात से परमेश्वर के सेवकों की तरह अपने सद्गुणों को प्रगट करते हैं, बड़े धैर्य से, क्लेशों से, दरिद्रता से, संकटों से,
५,६ **कोड़े** खाने से, कैद होने से, हुल्लड़ों से, परिश्रम से, जागते रहने से, उपवास करने से, **पवित्रता** से, ज्ञान से, धीरज से, कृपालुता
७,८ से, पवित्र आत्मा से, **सच्चे** प्रेम से, सत्य के वचन से, परमेश्वर की सामर्थ से; धार्मिकता के हथियारों से जो दहिने बाएं हैं, **आदर**
९ और निरादर से, दुरनाम और सुनाम से, हालांकि भरमानेवालों जैसे मालूम होते हैं तौभी सच्चे हैं । **अनजानों** के समान हैं, तौभी
१० प्रसिद्ध हैं; मरते हुओं के जैसे हैं और देखो जीवित हैं; मार खाने वालों के समान हैं परन्तु प्राण से मारे नहीं जाते । **शोक** करनेवालों

---

राजदूत वह है जो किसी एक व्यक्ति और दूसरे लोगों के स्थान पर जाता है । वह स्वयं के अधिकार से न ही कार्य करता है, न बोलता है । वह कहता वही है, जो कहने के लिए भेजा जाता है । मसीह स्वर्ग में हैं । उनके राजदूत उनके नाम से इस पृथ्वी पर बोलते है और संदेश देते हैं । उनके माध्यम से वह मसीही उनसे बिनती करता है । कुरिन्थ के विश्वासियों का परमेश्वर से मेल हो चुका था । देखें कि परमेश्वर कैसे लोगों से याचना करते हैं तुलना करें यहेज. १८:३०-३२ से ।

५:२१ - यहाँ चार सत्य हैं ।

पहला, मसीह निष्पाप थे (यूहन्ना ८:४६; इब्रा. ४:१५; ७:२६; १ पत. २:२२; १ यूहन्ना ३:५) ।

दूसरा, परमेश्वर ने उन्हे पाप बना डाला - परमेश्वर ने सारे संसार के पापों को उन पर लाद दिया और मसीह ने उनके बदले दण्ड उठाया । परमेश्वर ने यीशु को पाप समझा । मनुष्य का हर प्रकार कर अपराध, दुष्टता, हिंसा भ्रष्टाचार और अन्य सभी प्रकार की बुराई को परमेश्वर के पवित्र बेटे के नाम पर कर दिया गया ।

तीसरा, यह सब ***"हमारे लिए"*** था (पद १४; १ पत. ३:१८; १ यूहन्ना ४:१०) परमेश्वर ने वह सब यीशु के नाम पर कर डाला ताकि वह सब हमारे खाते में न रहे ।

चौथा, परमेश्वर का उद्देश्य यह था कि मसीह यीशु में विश्वासी, परमेश्वर की धार्मिकता बन जाएं । यह धर्मी ठहराए जाने की ओर इशारा है (रोमि. ३:२१-२६ पर नोट्स देखें) और मसीह के साथ एकता की ओर भी (यूहन्ना १७:२०-२३; रोमि. ६:३-८; इफि १:१,४) । मसीह स्वयं परमेश्वर की धार्मिकता हैं (१ कुरि. १:३०; रोमि. ३:२१-२४; प्रेरित. ३:१४) । विश्वासी उनसे जुड़े हुए हैं, इसलिए उसमें धार्मिकता बन गए हैं । जो कुछ मसीह परमेश्वर के साम्हने हैं, वही विश्वासी उनके साम्हने हैं ।

## अध्याय ६

६:१,२ - ***"सहकर्मी"*** - ५:२०; १ कुरि. ३:९ परमेश्वर के अनुग्रह का अर्थ वह दया है जिसके बारे में ५:२१ में बतलाया गया है । इसे ***"व्यर्थ में"*** ग्रहण करने का अर्थ होगा, सुनना, जानना और इस विषय में कुछ न करना । इसका अर्थ इस प्रकार से इसे ग्रहण करना है, कि जीवन पर इसका प्रभाव न हो और परिणाम उद्धार न हो । इस बात पर ज़ोर डालने के लिए वह यशा. ४९:८ की ओर संकेत करता है । उद्धार का दिन अभी है - मसीह में प्रगट किया गया परमेश्वर की दया का युग ।

६:३-१० - पौलुस अपनी सेवकाई को सही ठहराता है । देखें १:१२-१४ । उसका इस बात पर ज़ोर दिया जाना उसके डर को दिखाता है । वह यह कि कुरिन्थि के कुछ या अधिक लोग उसे मसीह का राजदूत स्वीकार करने के बजाए बिगड़े हुए सुसमाचार के देने वाले झूठे शिक्षकों को ग्रहण करें । इसीलिए वह उनके साम्हने अपने चरित्र और अनुभव को रखता है । इन सब बातों से प्रगट होता है कि वह परमेश्वर का सच्चा सेवक था ।

६:३ - वहाँ पर कुछ लोग उसकी सेवकाई को बेकार समझते थे । उसने यह निर्णय किया था कि वह स्वयं वह ऐसा नहीं करेगा ।

६:४,५ - १:८; ४:८,९; ११:२३-२९; १ कुरि. ४:९-१३ से तुलना करें । इन सब बातों को धीरज से सहते हुए उन्होंने दिखा दिया, कि वे मसीह के सच्चे सेवक हैं । जिन झूठे शिक्षकों को कुरिन्थि में स्वीकार किया गया था, उनके और पौलुस के जीवन में कितना अन्तर था । इन बातों को वहाँ के मसीही लोगों ने अपनी आँखों से देखना चाहिए था ।

६:६,७ - परमेश्वर के लिए उसकी सेवा में प्रगट गुण और सामर्थ के विषय में वह कहता है । प्रत्येक मसीह के सेवक को ये गुण रखने चाहिए और बढ़ाते जाना चाहिए । वह कहता है कि उसके जीवन में ये फल इस बात का सबूत हैं कि वह परमेश्वर का सेवक है, एक झूठा भविष्यद्वक्ता नहीं । मत्ती ७:१६-२० से तुलना करें ।

६:७ - ***"हथियारों"*** - १०:४; इफि. ६:११-१७ । उसके अस्त्रशस्त्र चालाकी नहीं, धोखा नहीं, कठोरता और हिंसा नहीं, किन्तु धार्मिकता के हथियार थे । धर्मी परमेश्वर ने उसे दिए थे और पौलुस ने उन्हें सही तरीके से उपयोग किया (१:१२) ।

६:८-१० - लोग क्या कहते हैं, इन सबकी परवाह न करके, वह सेवा करता रहा । कमी घटी, भावनाओं की गिरावट और दुःखों के बावजूद, उसने सेवा जारी रखी । सभी परिस्थितियों में वह सिद्ध कर रहा था कि ५:१४ सत्य है ।

६:१० - ***"शोक करनेवाले"*** - २:४; ५:४; रोमि. ९:२,३; ७:२४ । इस संसार मे कलीसिया में अनेक कारण हैं, जो प्रभु के सेवकों को दुखी करते हैं । इन सभी के बीच पौलुस के हृदय में से आनन्द का झरना बहता रहता था । - २:३; ७:४; रोमि. ५:११; १४:१७; गल. ५:२२ ।

के समान हैं, परन्तु सदा आनन्द करते हैं; कंगालों के जैसे हैं, परन्तु बहुतों को धनवान बना देते हैं; ऐसे हैं जैसे हमारे पास कुछ नहीं
११,१२ तौभी सब कुछ रखते हैं । **हे** कुरिन्थियों हम ने खुलकर तुम से बातें की हैं, हमारा दिल तुम्हारी ओर खुला हुआ है । **तुम्हारे**
१३ लिये हमारे मन में कुछ सकरापन नहीं, पर तुम्हारे ही मनों में सकरापन है । **लेकिन** अपने बच्चे जानकर तुम से कहता हूं कि तुम
१४ भी उसके बदले में अपना दिल बड़ा करो । **अविश्वासियों** के साथ असमान जूए में न जुतो, क्योंकि धार्मिकता और अधार्मिकता का
१५ क्या मेल जोल ? या उजियाले और अंधियारे की क्या संगति ? **और** मसीह का बलियाल के साथ क्या लगाव ? या विश्वासी के
१६ साथ अविश्वासी का क्या नाता? **और** मूरतों के साथ परमेश्वर के भवन का क्या सम्बध ? क्योंकि हम तो जीवते परमेश्वर के भवन
हैं; जैसा परमेश्वर ने कहा है कि मैं उन में बसूंगा और उन में चला फिरा करूंगा; और मैं उन का परमेश्वर हूंगा, और वे मेरे लोग
१७ होंगे । **इसलिए** प्रभु कहते हैं, कि उन के बीच में से निकलो और अलग रहो; और अशुद्ध वस्तु को मत छुओ, तो मैं तुम्हें स्वीकार
१८ करूंगा; **मैं** तुम्हारा पिता हूंगा और तुम मेरे बेटे और बेटियां होगेः यह सर्वशक्तिमान प्रभु परमेश्वर का वचन है ।
**७** **इसलिए** हे प्यारो, जब कि ये प्रतिज्ञाएं हमें मिली हैं, तो आओ, हम अपने आप को शरीर और आत्मा की सब गंदगी से साफ करें, और

---

***"गरीब"*** - प्रेरित. ३:६; लूका ६:२०; १ तिमो. ६:६-६ । पौलुस के पास वरदान और योग्यताएँ थीं । यदि वह चाहता तो काफी धन कमा सकता था । उसने उस मसीह की शिष्यता को स्वीकार किया जो हमारे लिए निर्धन बना था (मत्ती ८:२०) ।

***"कुछ नहीं", "सब कुछ"*** - फिलि. ३:८; मत्ती १६:२७; १ कुरि. ३:२१,२२ से तुलना करें ।

६:११-१३ - हृदय खोलने का अर्थ है, ***"जगह बनाना"*** । यह प्रेम और देखरेख को दिखाता है - ७:२,३ । प्रायः मसीहियों के हृदय जकड़े और सकरे होते हैं । उन्हें केवल अपने स्वार्थ की बातें याद रहती हैं तुलना करें फिलि. २:४,२१ ।

६:१४-१८ - इस आवश्यक सत्य को पौलुस साम्हने रखता है - मसीह में विश्वासी विशेष लोग हैं - और उन्होंने ऐसा व्यवहार भी करना चाहिए । व्यव. ७:३-६; १ पत. २:६-१२; यूहन्ना १७:६-१०,१७-१६ । १४ पद एक ऐसा सिद्धांत दिखाता है जो सभी विश्वासियों के लिए, सभी स्थानों में सभी समयों में लागू होता है । उन्होंने अविश्वासियों के साथ अत्याधिक निकट की साझेदारी नहीं करनी चाहिए ।

***"जूए में जुतना"*** इसका अर्थ है किसी सामान्य लक्ष्य और कार्य में बहुत मिलजुल कर कार्य करना व्यव २२:१० देखें । विश्वासी मसीह के साथ जोड़े गए हैं । मत्ती (११:२८,२६) । इसलिए जो मसीह को ठुकराते हैं, उनके साथ बहुत निकटता का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए । निश्चित रीति से विश्वासी अविश्वासी के बीच विवाह भी नहीं होना चाहिए । (१ कुरि. ७:३६; एज्रा. ६:१,२; नहे. १३:२३-२७; मला. २:१२) । झूठे शिक्षक जो उल्टा सीधा प्रचार करते हैं और जो बाईबिल के आधारभूत सिद्धान्तों का विरोध करते हैं, उनके साथ भी संगति नहीं करना है । निस्सन्देह पौलुस विश्वासियों को ऐसे स्थान में कार्य करने से मना नहीं कर रहा है जहाँ अविश्वासी कार्य करते हैं । वह उनसे काम लेने के विरोध में भी नहीं है । इसका यह अर्थ भी नहीं है, कि उन्हें अविश्वासियों से अपना नाता तोड़ लेना चाहिए (१ कुरि. ५:६,१०) । मसीह के लिए जीतने के लिए पौलुस स्वयं उनके साथ सम्पर्क रखता था (१ कुरि. ६:१६-२३; मत्ती ११:१६ से तुलना करे) । यहाँ वह अविश्वासियों के साथ सामान्य लक्ष्य और निकट की संगति की मनाही करता है । उन सम्बन्धों की भी जो बाइबिल के सिद्धान्तों से समझौता करने के लिए मजबूर करते हैं या मसीह के साथ विश्वासियों की सहभागिता को खतरे में डालते हैं । जो विश्वासी इस असमान जूए में न जुतने के सिद्धांत को गंभीरता से नहीं लेता, वह अपने जीवन में समस्या को बुला रहा है ।

पद १४-१६ में पौलुस पाँच प्रश्न पूछता है यह दिखाने के लिए कि विश्वासियों का अविश्वासियों के साथ मेल कितना गलत है । वस्तुएँ एवं लोग जिनमें कोई सामान्य बात नहीं होती हैं, मात्र दिखाना नहीं चाहिए कि ऐसा है । दुष्टता से अलगाव और दुष्ट लोगों से अलगाव, परमेश्वर के लोगों के लिए, परमेश्वर की ओर से आज्ञा है (पद १७) ।

६:१४ - ***"ज्योति"***- विश्वासी ज्योति में हैं, ज्योति से प्रेम करते हैं । वे ज्योति की सन्तान हैं (मत्ती ५:१४; यूहन्ना ३:२१;८:१२; इफि. ५:८; १ थिस्स. ५:५) । अविश्वासियों की स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है (यूहन्ना ३:१६; इफि. ६:१२; १ यूहन्ना २:६,११) । इसलिए क्या जानते-बूझते एक साथ कार्य करने का साहस विश्वासियों को करना चाहिए?

६:१५ - ***"बलियाल"*** - इस इब्रानी शब्द का अर्थ है ***"बेकार और दुष्ट"*** । यहाँ पौलुस इस शब्द को शैतान के लिए इस्तेमाल करता है । विश्वासी मसीह से जोड़े गए हैं, अविश्वासी शैतान से (इफि. २:२; यूहन्ना ८:४४) ।

६:१६ - विश्वासी परमेश्वर का मन्दिर हैं (१ कुरि. ३:१६; ६:१६; इफि. २:२१,२२) । अविश्वासी या तो सचमुच की मूर्तियों की उपासना करते हैं या (मन की मूर्तियों की इफि. ५:५) या स्वयं को मूर्ति बना लेते हैं । इसलिए दो बिल्कुल भिन्न प्रकार के लोगों के बीच किस प्रकार का समझौता हो सकता है । कुछ पुराने नियम के पदों की ओर इशारा करके परमेश्वर के मन्दिर के अर्थ को बताना है - लैव्य. २६:११,१२; यिर्म. ३२:३८; यहेज. ३६:२७; ६:१७,१८ । इस भाग को निश्चित सारांश देने के लिए, पौलुस पुराने नियम का उदाहरण देता है । किसी एक पद के लिए वह एक सही-सही उदाहरण नहीं देता है, किन्तु यशा. ५२:११,१२; २ शमू. ७:१४; यर्मि. ३१:६; यशा. ४३:६ आदि पद उसके मन मे होंगे । जो लोग एक भिन्न प्रकार के पवित्र लोग होना चाहते है, देखें कि एक बड़ी बात वह उनके साम्हने रखता है । वे इस संसार की संगति और आमोद-प्रमोद को खो देते है, किन्तु वे सर्वशक्तिमान परमेश्वर की सहभागिता प्राप्त करते हैं । बहुत से लोग दोनों ही चाहते हैं, किन्तु यह संभव नहीं है (याकूब ४:४) ।

## अध्याय ७

७:१ - परमेश्वर की महान प्रतिज्ञाओं को सुनने के बाद हमें पहले जैसा नहीं रहना चाहिए । परमेश्वर हमें वचन देते हैं और अपनी दया दिखाते हैं, ताकि हम उनकी मानें और पवित्र बनें । ऐसे अलग किए हुए आनन्दित लोग, जैसा वह चाहते हैं । रोमि. १२:१,२;

२ परमेश्वर का भय रखते हुए पवित्रता को सिद्ध करें । **हमें** स्वीकार करोः हम ने न किसी पर अन्याय किया, न किसी को बिगाड़ा,
३ और न किसी को ठगा । **मैं** तुम्हें दोषी ठहराने के लिये यह नही कहताः क्योंकि मैं पहिले ही कह चुका हूं, कि तुम हमारे मन में
४ ऐसे बस गए हो कि हम तुम्हारे साथ मरने जीने के लिये तैयार हैं । **मैं** तुम से बहुत साहस के साथ बोल रहा हूं, मैं तुम्हारे कारण
५ बहुत प्रसन्न हूँ मैं शान्ति से भर गया हूं; अपने सारे दुःखों में मैं आनन्द में अति भरपूर रहता हूं । **क्योंकि** जब हम मकिदुनिया में
६ आए, तब भी हमारे शरीर को चैन नहीं मिला, परन्तु हम चारों ओर से क्लेश पाते थे; बाहर लड़ाइयां थीं भीतर भयंकर बातें थीं । **तौभी**
७ उदास लोगों को शान्ति देनेवाले परमेश्वर ने तीतुस के आने से हम को शान्ति दी । **और** न केवल उसके आने से परन्तु उस की
उस शान्ति से भी, जो उस को तुम्हारी ओर से मिली थी; और उस ने तुम्हारी लालसा, और तुम्हारे दुःख और मेरे लिये तुम्हारी
८ धुन का समाचार हमें सुनाया, जिस से मुझे और भी आनन्द हुआ । **क्योंकि** हालांकि मैं ने अपनी चिट्ठी से तुम्हें शोकित किया, परन्तु
उस से पछताता नहीं जैसा कि पहिले पछताता था क्योंकि मैं देखता हूं, कि उस चिट्ठी से तुम्हें शोक तो हुआ परन्तु वह थोड़ी देर
९ के लिये था । **अब** मैं आनन्दित हूं पर इसलिये नहीं कि तुम को शोक पहुंचा वरन् इसलिये कि तुम ने उस शोक के कारण मन
१० बदला क्योंकि तुम्हारा शोक परमेश्वर की इच्छा के अनुसार था, कि हमारी ओर से तुम्हें किसी बात में हानि न पहुंचे । **क्योंकि**
परमेश्वर-भक्ति का शोक ऐसा पश्चात्ताप उत्पन्न करता है जिस का परिणाम उद्धार है और फिर उस से पछताना नहीं पड़ताः परन्तु
११ सांसारिक शोक मृत्यु उत्पन्न करता है । **देखो,** इसी बात से कि तुम्हें परमेश्वर-भक्ति का शोक हुआ तुम में अपने आप को सही
दिखाने की तत्परता, क्रोध, भय, लालसा, धुन और बदला लेने का विचार उत्पन्न हुआ ? तुम ने सब प्रकार से यह पुष्टि करके दिखा
१२ दिया, कि तुम इस बात में निर्दोष हो । **फिर** मैं ने जो तुम्हारे पास लिखा था, वह न तो उसके कारण लिखा, जिस ने अन्याय किया,
और न उसके कारण जिस पर अन्याय किया गया, परन्तु इसलिये कि तुम्हारा जोश जो हमारे लिये हैं; वह परमेश्वर के सामने तुम

---

१ कुरि. १५:५८; इफि. ४:१; कुलु. ३:१; तीतुस २:११-१४ से तुलना करें । यहाँ मसीह का राजदूत कहता है कि पवित्रता में हमें सिद्ध बनते जाना चाहिए (१३:९,११ भी देखे) ।

***"सिद्धता"*** पर मत्ती ५:४८ में नोट्स देखें । निश्चित रीति से वह नहीं चाहेगा कि हम आधे, चौथाई या दस में से ९ भाग ही पवित्र रहें - यह तो उसके बराबर है कि हम आधा, चौथाई और दस में से एक भाग ही पवित्र रहें । हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि उतने पवित्र हों जितना मसीह इस पृथ्वी पर थे ।

सिद्धता का लक्ष्य रखना और इसे प्राप्त कर एक ही बात नहीं है । आत्मिक रीति से कहें, तो संसार एक अशुद्ध स्थान है और यहाँ विश्वासी आसानी से अशुद्ध हो सकते हैं । यूहन्ना १३:१० देखे । विश्वासियों के पास पापमय स्वभाव भी है जो उनके लिए फन्दा बन सकता है । देखे रोमि. ७:१८; गल. ५:१६,१७; १ यूहन्ना १:८ आदि ।

शब्द ***"सिद्धता"*** एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया को दिखाता है । जो सिद्धता का कार्य अभी जारी है, वह एक क्षण में नहीं हो सकता । पवित्रता में सिद्ध होने के क्षेत्र में विश्वासियों को कुछ करना है - यह ऐसा कोई अनुभव नहीं जो उन्हें बैठे-ठाले मिल जाता है । १ कुरि. ९:२७; कुलु. ३:५; १ यूहन्ना ३:३ से तुलना करें । यह कार्य हमारे अपने बल से नहीं किया जा सकता है । - रोमि. ८:१३; गल. ५:१६ । पवित्रीकरण पर यूहन्ना १७:१७-१९ में देखें; लैव्य २०:७ में पवित्र पर देखें ।

***"परमेश्वर का भय"*** - ५:११; १ पत. १:१७ देखें । हम में पवित्रता को बढ़ाने के लिए, परमेश्वर का भय आवश्यक है (अय्यूब २८:२८; भजन. ३४:११-१४) ।

७:२,३ - ६:११-१३ देखें

७:४ - ***"आनन्द"*** यहाँ उसका आनन्द यह था कि कुरिन्थ में मसीही (शिष्य लोग) अपने विश्वास में स्थिर थे और परमेश्वर के वचन की आज्ञा मानने का प्रयत्न कर रहे थे ।

७:५ - पौलुस, जो कि महान प्रेरित था, बिना डर, बेचैनी और संघर्ष का जीवन नहीं बिता रहा था (२:१३) ।

७:६ - १:३,४ देखें तीतुस ने कुरिन्थ में भेंट दी और मकिदुनिया में पौलुस के पास आया था ।

७:८ - २:३,४ देखें क्योंकि उसने उन्हें एक बड़े खतरे में देखा था, एक कड़ा पत्र लिखा जिससे उन्हें काफी चोट लगी । ऐसा इसलिए था, क्योंकि वह उनसे बहुत प्रेम करता था और वचन की सच्चाई में मज़बूत करना चाहता था । प्रेम कमज़ोर और मात्र भावना नहीं है । ऐसा नहीं है, कि प्रेम के कारण डाँट न लगायी जाए और लोग नाश हो जाएं ।

७:९ - पौलुस के पत्र के द्वारा जो दुःख उन्हें हुआ उसका परिणाम अच्छा हुआ - वह था 'मन परिवर्तन' । उन्होंने कुछ दुष्टता को छोड़ दिया । झूठे मार्ग से हटे और पूरे हृदय से परमेश्वर की ओर मुड़े ।

७:१० - ***"परमेश्वर भक्ति का शोक"*** - एक ऐसा शोक है जो परमेश्वर उत्पन्न करते हैं । एक ऐसा शोक जो परमेश्वर की आत्मा को दुःखित करता है (इफि ४:३०) । ऐसा शोक जिन्हें होता है, वह उन्हें उन सभी बातों से अलग करता है, जो बातें परमेश्वर को दुःखित करती हैं और चोट पहुँचाती हैं ।

***"सांसारिक"*** शोक परमेश्वर से सम्बधित नहीं है, किन्तु स्वयं से है । यह कुछ खो जाने पर या निराशा से या अपनी इच्छा पूरी न होने से; कष्ट होने से या किसी दुष्टता में पकड़े जाने से होता है । इससे आत्मग्लानि होती है, किन्तु सच्चा पश्चाताप नहीं (मत्ती २७:३-५) । लोग सांसारिक शोक के साथ पाप में बने रहते हैं । जैसे कि हर एक दूसरी बात जो सांसारिक है, मृत्यु की ओर ले जाती है, यह आत्मिक मृत्यु की ओर ले जाती है ।

७:११ - देखें कि ईश्वरीय शोक और पश्चाताप कैसे साथ-साथ कार्य करता है

७:१२ - देखें २:९ ***"हमारे लिए"*** का अर्थ है परमेश्वर के सत्य के प्रति भी समर्पित । यह पौलुस के लिए महत्वपूर्ण बात थी ।

१३ पर प्रगट हो जाए । **इसलिये** हमें शान्ति हुई; और हमारी इस शान्ति के साथ तीतुस के आनन्द के कारण और भी आनन्द हुआ
१४ क्योंकि उसका जी तुम सब के कारण हरा भरा हो गया है । **क्योंकि** यदि मैं ने उसके साम्हने तुम्हारे विषय में कुछ प्रशंसा की,
तो शर्मिन्दा नहीं हुआ, परन्तु जैसे हम ने तुम से सब बातें सच सच कह दी थीं, वैसे ही हमारा प्रशंसा करना तीतुस के साम्हने भी
१५ सच निकला । **और** जब उस को तुम सब के आज्ञाकारी होने का स्मरण आता है, कि क्यों तुमने डरते और कांपते हुए उस से
१६ भेंट की; तो उसका प्रेम तुम्हारी ओर और भी बढ़ता जाता है । **मैं** आनन्द करता हूं, कि तुम्हारी ओर से मुझे हर बात में साहस
**८** होता है । **अब** हे भाइयो, हम तुम्हें परमेश्वर के उस अनुग्रह का समाचार देते हैं, जो मकिदुनिया की कलीसियाओं पर हुआ है ।
२,३ **कि** क्लेश की बड़ी परीक्षा में उन के बड़े आनन्द और भारी कंगालपन के बढ़ जाने से उन की उदारता बहुत बढ़ गई । **और**
४ उन के विषय में मेरी यह गवाही है, कि उन्हों ने अपनी सामर्थ भर, वरन् सामर्थ से भी बाहर मन से दिया । **और** इस दान में
५ और पवित्र लोगों की सेवा में भागी होने के अवसर के विषय में हम से बार बार बहुत बिनती की । **और** जैसी हम ने आशा की
६ थी, वैसी ही नहीं, वरन् उन्हों ने प्रभु को, फिर परमेश्वर की इच्छा से हम को भी अपने लिये दे दिया । **इसलिये** हम ने तीतुस
७ को समझाया, कि जैसा उस ने पहिले आरम्भ किया था, वैसा ही तुम्हारे बीच में इस दान के काम को पूरा भी कर ले । **इसलिए** जैसे
हर बात में अर्थात् विश्वास, वचन, ज्ञान और सब प्रकार के यत्न में, और उस प्रेम में, जो हम से रखते हो, बढ़ते जाते हो, वैसे ही
८ इस दान के काम में भी बढ़ते जाओ । **मैं** आज्ञा के रूप पर तो नहीं, परन्तु औरों के उत्साह से तुम्हारे प्यार की सच्चाई को परखने
९ के लिये कहता हूं । **तुम** हमारे प्रभु यीशु मसीह की असीमित करूणा जानते हो, कि वह धनी होकर भी तुम्हारे लिये कंगाल बन गए
१० ताकि उनके कंगाल हो जाने से तुम धनी हो जाओ । **और** इस बात में मेरा विचार यही है क्योंकि यह तुम्हारे लिये अच्छा है; जो एक

७:१३-१६ - ये पद इस बात का सबूत हैं, कि विश्वासी एक दूसरे को किस प्रकार से हरा भरा कर सकते हैं । एक दूसरे से प्रोत्साहन और आनन्द प्राप्त कर सकते हैं । वे हृदय के उस आनन्द को भी दिखाते हैं जो आत्मा जीतने वाले के मन में तब होता है जब शिष्य सत्य पर चलते हैं - ३ यूहन्ना ३,४ ।

## अध्याय ८

८:१ - यह और अगला अध्याय उन विश्वासियों की ओर इशारा करता है जो निर्धन थे, आवश्यकता में थे । देखें १ कुरि. १६:१-४ । उन स्थानीय बात पर अपने विचार प्रगट करने के साथ वह देने के सम्बन्ध में कुछ सुन्दर सिद्धान्त देता है ।

८:१-५ - मकिदुनिया में कलीसियाओं (इसमें फिलिप्पी और थिस्सुलुनीके की कलीसियाएँ भी थीं) ने अद्भुत रीति से देने के गुण को दिखाया था - इस गुण को परमेश्वर ने उन कलीसियाओं में डाला था (पद १) । वहाँ विश्वासी बहुत गरीब थे और सताव सह रहे थे । इसके बावजूद उन्होंने दान दिया । उन्होंने ***"बड़े आनन्द"*** के कारण ऐसा किया था । पौलुस ने उन पर ऐसा करने के लिए ज़ोर नहीं डाला था । वे यह जानते थे कि मसीह और उनके लोगों को देना एक सुनहरा अवसर था न कि कष्टदायक कर्तव्य । संसार में सभी मण्डलियों और विश्वासियों को यह सत्य सीखना चाहिए । ऐसा जानने और उसके अनुसार करने से कलीसियाओं और संसार में बड़ी आशीष होगी ।

८:५ - पौलुस की आशा से अधिक उन्होंने किया । उन्होंने न केवल अपना धन दिया, किन्तु जैसी आवश्यकता यीशु के सेवकों को थी, अपने आप तक को दे दिया, इस बात में उन्हें प्रसन्नता थी कि उन्होंने अपने आपको और अपने धन को दिया । रोमि. १२:१,२ से तुलना करें ।

८:६ - तीतुस कुरिन्थि गया था (७:६) पौलुस पुनः उसे भेजना चाहता है (पद १६-१८) ।
***"पूरा भी कर ले"*** - ऐसा लगता है कि कुरिन्थि के लोगों ने जिस पैसे की प्रतिज्ञा की थी, या जो दे सकते थे, अभी तक नहीं दिया था (९:५) ।

८:७ १ कुरि. १:५-७

८:८ ***"आज्ञा के रूप में नहीं"*** वह यह जानता था कि देने की इच्छा मन से स्वयं निकलनी चाहिए । परमेश्वर दबाव वाली और बिना इच्छा वाली भेंट से प्रसन्न नहीं होता है (९:७) । जो प्यार से देता है, उससे वह प्रसन्न होता है । देना मसीह के लिए एक व्यक्ति के हृदय को दिखाता है । यह सदा सत्य है । जो व्यक्ति मसीह को नहीं देता, वह उससे प्यार भी नहीं करता । चाहे ऐसा व्यक्ति कितने ही दावे क्यों न करे । देने के सम्बन्ध में, आज्ञा देने के बजाए, पौलुस उनके साम्हने एक उदाहरण रखता है । पद ९ में वह एक और बड़ा उदाहरण देता है ।

८:९ प्रभु यीशु मसीह के पास जो देने की प्रवृत्ति थी वह बिना किसी सीमा की थी । जो कुछ उसके पास था, वह सब उसने प्रेम से दे दिया । वही सब विश्वासियों के लिए एक नमूना है ।
***"वह धनी था"*** - यूहन्ना १:१-३; १७:५; कुलु. १:१६; इब्रा. १:२ ।
***"वह निर्धन बना"*** - लूका २:७; मत्ती ८:२०; १७:२७; २७:४६; फिलि. २:६-८; यशा. ५३:२-६ ।
यह तुम्हारे लिए था, यानि कि सभी विश्वासियों के लिए । मसीह ने हमसे प्रेम किया और अपने आप को दे दिया यूहन्ना १०:११-१८; गल २:२० । वह चाहते थे कि हम ***"धनी बन जाएं"*** - बैंक में रखे धन से नहीं, किन्तु वह धन जिसके विषय में मत्ती १९:२८,२९; यूहन्ना १४:२,३; रोमि. ८:१७; १ कुरि. ३:२१-२३; इफि. १:३,७,८; १ पत. १:४; प्रका. २१:७ । यह 'उसकी निर्धनता ही से संभव था' - इसका अर्थ है कि यदि मसीह ने अपराधियों के स्थान पर मरने के लिए अपना सब कुछ न दे दिया होता, तो किसी ने भी उद्धार के धन को प्राप्त न किया होता । प्रेम और देने के अनुग्रह के संदर्भ में प्रेरितों ने प्रभु के नमूने को अपनाया - ६:१०; प्रेरित. ३:६; मत्ती १९:२७ । क्या हम ऐसा करते हैं ?

११ वर्ष से न तो केवल इस काम को करने ही में, परन्तु इस बात के चाहने में भी प्रथम हुए थे। **इसलिये** अब यह काम पूरा करो;
१२ कि जैसा इच्छा करने में तुम तैयार थे, वैसा ही अपनी अपनी पूंजी के अनुसार पूरा भी करो। **क्योंकि** यदि मन की तैयारी हो तो
१३ दान उसके अनुसार स्वीकार भी होता है जो उसके पास है, न कि उसके अनुसार जो उसके पास नहीं। **यह** नहीं, कि दूसरों को
१४ चैन और तुम को क्लेश मिले। **परन्तु** बराबरी के विचार से इस समय तुम्हारी बढ़ती उनकी घटी में काम आए, ताकि उनकी
१५ बढ़ती भी तुम्हारी घटी में काम आए, कि बराबरी हो जाए। **जैसा** लिखा है, कि जिस ने बहुत बटोरा उसका कुछ अधिक न निकला,
१६ और जिस ने थोड़ा बटोरा उसका कुछ कम न निकला। **और** परमेश्वर का धन्यवाद हो, जिस ने तुम्हारे लिये वही उत्साह तीतुस
१७ के हृदय में डाल दिया है। **कि** उस ने हमारा समझाना मान लिया वरन् बहुत उत्साही होकर वह अपनी इच्छा से तुम्हारे पास गया है।
१८,१९ **और** हम ने उसके साथ उस भाई को भेजा है जिस का नाम शुभसंदेश के विषय में सब कलीसिया में फैला हुआ है। **और**
इतना ही नहीं, परन्तु वह कलीसिया में ठहराया भी गया कि इस दान के काम के लिये हमारे साथ जाए और हम यह सेवा इसलिये
२० करते हैं, कि प्रभु की महिमा और हमारे मन की तैयारी प्रगट हो जाए। **हम** इस बात में सावधान रहते हैं, कि इस उदारता से
२१ दिए गए दान के विषय में जिसके इस्तेमाल के लिए हम जिम्मेदार हैं, कोई हम पर दोष न लगाने पाए। **अपनी** ईमानदारी के
२२ विषय में परमेश्वर के समर्थन को, किन्तु मनुष्य के **और** हम ने उसके साथ अपने भाई को भेजा है, जिस को हम ने बार बार
२३ परख के बहुत बातों में उत्साही पाया है; परन्तु अब तुम पर उस को बड़ा भरोसा है, इस कारण वह और अधिक उत्साही है। **यदि**
कोई तीतुस के विषय में पूछे, तो वह मेरा साथी, और तुम्हारे लिये मेरा सहकर्मी है; और यदि हमारे भाइयों के विषय में पूछे, तो
२४ वे कलीसियाओं के भेजे हुए और मसीह के समान हैं। **इसलिए** अपना प्रेम और हमारा वह आनन्द जो तुम्हारे विषय में है कलीसियाओं
**९** के साम्हने उन्हें सिद्ध करके दिखाओ। **अब** उस सेवा के विषय में जो पवित्र लोगों के लिये की जाती है, मुझे तुम को लिखना
२ आवश्यक नहीं। **क्योंकि** मैं तुम्हारे मन की तैयारी को जानता हूं, जिस के कारण मैं तुम्हारे विषय में मकिदुनियों के साम्हने आनन्दित
३ होता हूँ, कि अखया के लोग एक वर्ष से तैयार हुए हैं, और तुम्हारे उत्साह ने और बहुतों को भी उभारा है। **परन्तु** मैं ने भाइयों
को इसलिये भेजा है, कि हम ने जो प्रसन्नता तुम्हारे विषय में दिखायी, वह इस बात में बेकार न ठहरे; परन्तु जैसा मैं ने कहा; वैसे ही
४ तुम तैयार रहो। **ऐसा** न हो, कि यदि कोई मकिदुनी मेरे साथ आए, और तुम्हें तैयार न पाए, तो क्या जाने, इस भरोसे के कारण हम

---

८:११,१२ - हमारा देना, हमारे पास जो है. उसके अनुपात में होना चाहिए १ कुरि. १६:२। निर्धन अधिक नहीं दे सकते, धनी लोगों को थोड़ा नहीं देना चाहिए।

***"ग्रहणयोग्य"*** पद १२ - मरकुस १२:४१-४४।

८:१३-१५ - यहां ***'समान'*** शब्द ***'मुख्य' या 'विशेष'*** है। विश्वासियों में आपस में प्रेम होना चाहिए। आवश्यकता में पड़े व्यक्ति के लिए तत्परता। प्रेरित. २:४४,४५; ४:३२-३५ से तुलना करें। देखें १ यूहन्ना ३:१६-१८। प्रभु यीशु इसका सबसे बड़े उदाहरण हैं। जो कुछ उनके पास है, उसको वह विश्वासियों के साथ बाँटते हैं। जो कुछ विश्वासियों के पास है, उसे वे मसीह और विश्वासियों के साथ क्यों नहीं बांटते है ? जबकि वे सभी मसीह में एक हैं, उनमें से कुछ अत्याधिक धनी और कुछ अत्याधिक निर्धन क्यों हैं ? जबकि कुछ लोगों के पास जीवन की आधारभूत वस्तुएं नहीं हैं, कुछ लोग क्यों अपना धन आमोद-प्रमोद की वस्तुओं में फेंक देते हैं ?

जब इस्राएल के लोग मरूस्थल में थे, परमेश्वर ने ऐसा किया कि सब लोगों में समानता थी (पद १५; निर्ग. १६:१८)। परमेश्वर विश्वासियों को अच्छी वस्तुएँ देते हैं, ताकि उनके पास पर्याप्त हो - इसलिए नहीं कि कुछ लोग मज़ा करें और दूसरे तकलीफ में रहें। किन्तु इस सम्बन्ध में कोई आज्ञा नहीं है। यह प्रेम की बात है। देने के लिए ज़ोर नहीं डाला जाना चाहिए। किसी भी व्यक्ति की सम्पति उसकी होती है। वह दे या रखे रहे, उसी पर निर्भर है। यदि वह अधिक रख लेता है, थोड़ा देता है, तो वही हानि उठाएगा, और दूसरों की हानि भी होगी। यदि वह दयालु होता है तो दूसरों की सहायता कर सकता है।

८:१८ - ***"भाई"*** हमें यह नहीं मालूम कि यह और पद २२ के भाई कौन थे।

८:१९ - १ कुरि. १६:३,४

८:२०,२१ - १२:१६-१८; १ कुरि. १६:३ देखें। यहाँ इस बात का अच्छा उदाहरण है कि परमेश्वर के कार्य के लिए धन कैसे इस्तेमाल किया जाना चाहिए। जिस तरह से पौलुस ने यह सब सिखाने में दुःख उठाया, यीशु के लोगों को भी ऐसा करना चाहिए। उन्हें यह जानना चाहिए कि चाहे लोग देखें या नहीं, प्रभु सब कुछ देखते हैं इब्रा. ४:१३।

८:२३ - ***"मसीह के लिए सम्मान"*** - यूहन्ना १७:१० से तुलना करें।

८:२४ - ***"अपने प्रेम कर सबूत"*** - पद ८, १ यूहन्ना ३:१७ से तुलना करें। यदि हम मसीह को और उसके कार्य के लिए नहीं देते हैं तो हमारे प्रेम का सबूत क्या होगा ? यदि हम मसीह से प्रेम करते हैं, हम उसके कार्य और उसके लोगों से प्रेम करेंगे और उनकी सहायता करना चाहेगे।

***"घमण्ड जो तुम्हारे बारे में है"*** - ७:१४ जिन लोगों को और जिन लोगों के बीच, पौलुस ने भेजा, उनके लिए पौलुस के प्रेम और चिन्ता को देखें (११:२८)।

## अध्याय ९

९:१,२ - देखे ८:६,७,१०,११

९:३,४ - देखे ८:१३,२२,२४ ऐसा लगता है कि कुरिन्थि में रहने वाले मसीहियों ने भेंट देने में दिलचस्पी ली थी, लेकिन बाद में धन इकट्ठा करने में उन्होंने लापरवाही दिखाई (८:१०,११)। दुःख की बात है, कि आज भी ऐसे मसीही हैं। आरम्भ में वे जोश दिखाते हैं,

५ (यह नहीं कहते कि तुम) शर्मिन्दा हो । **इसलिये** मैं ने भाइयों से यह बिनती करना आवश्यक समझा कि वे पहिले से तुम्हारे पास
जाएं और तुम्हारी उदारता का फल जिस के विषय में पहिले से वचन दिया गया था, तैयार कर रखें, कि यह दबाव से नहीं परन्तु
६ उदारता के फल की तरह तैयार हों । **परन्तु** बात तो यह है, कि जो थोड़ा बोता है वह थोड़ा काटेगा भी; और जो बहुत बोता है,
७ वह बहुत काटेगा । **हर** एक जैसा मन में ठाने वैसा ही दान करे; न कुढ़ कुढ़ के, और न दबाव से, क्योंकि परमेश्वर हर्ष से देनेवाले
८ से प्रेम रखता है । **और** परमेश्वर सब प्रकार का अनुग्रह तुम्हें बहुतायत से दे सकता है जिस से हर बात में और हर समय, सब
९ कुछ, जो तुम्हें आवश्यक हो, तुम्हारे पास रहे, और हर एक भले काम के लिये तुम्हारे पास बहुत कुछ हो । **जैसा** लिखा है, उस
१० ने बिथराया, उस ने कंगालों को दान दिया । उसका अच्छा कार्य परमेश्वर को स्मरण रहेगा । **जो** बोने वाले को बीज, और भोजन
११ के लिये रोटी देता है वह तुम्हें बीज देगा, और उसे फलवन्त करेगा; और तुम्हारी धार्मिकता के फलों को बढ़ाएगा । **कि** तुम हर
१२ बात में सब प्रकार की उदारता के लिये जो हमारे द्वारा परमेश्वर का धन्यवाद करवाती है, धनवान किए जाओ । **क्योंकि** इस सेवा
के पूरा करने से, न केवल पवित्र लोगों की घटियां पूरी होती हैं, परन्तु लोगों की ओर से परमेश्वर का बहुत धन्यवाद होता है ।
१३ **क्योंकि** इस सेवा को, प्रमाण स्वीकार कर, वे परमेश्वर की महिमा प्रगट करते हैं, कि तुम मसीह के सुसमाचार को मान कर उसकी
१४ आज्ञाकारिता में रहते हो, और उन की, और सब की सहायता करने में उदारता प्रगट करते रहते हो । **वे** तुम्हारे लिये प्रार्थना करते
१५ हैं; इसलिये कि तुम पर परमेश्वर का बड़ा ही अनुग्रह है, तुम्हारी लालसा करते रहते हैं । **परमेश्वर** का उसके उस दान के लिये

---

किन्तु बाद में समय बीतने पर ठण्डे हो जाते हैं और कार्य को पूरा नहीं करते । यह मज़बूत न होने और अस्थिर होने का सबूत है ।

९:५ - जहाँ तक देने का प्रश्न है, विश्वासियों को अपने लिए इतना अधिक रखना नहीं चाहिए, जितना वे चाहते हैं । इसलिए नहीं देना चाहिए क्योंकि उनसे आशा की जाती है या वे देने से बच नहीं सकते ।

९:६ - नीति. ११:२४,२५; १९:१७; २२:८,९; लूका ६:३८; गल. ६:७ से तुलना करें । इस सिद्धान्त पर ध्यान दें । कुछ लोग निर्धन हैं और रहेंगे भी, आर्थिक और आत्मिक रीति से । इसलिए कि वे परमेश्वर को और दूसरों को देना नहीं चाहते ।

९:७ - पद ५; ८:८ यदि हमारी भेंट से परमेश्वर को प्रसन्न करना है तो इसे हृदय से होना है । आनन्द से देना है, शोक करते हुए नहीं । यदि हमारे पास प्रेम है, तो देना हमारे लिए साँस लेने के समान होगा ।

९:८ - जो लोग हृदय से आनन्द से दूसरों को देते हैं, वे कभी नुकसान नहीं उठाएगे । सच्चाई तो इसके विपरीत है - नीति ११:२४,२५। परमेश्वर संसार के शासक हैं । मनुष्य की योजनाएँ, लक्ष्य, भूमि, मौसम, अर्थव्यवस्था और दूसरी बातें जो आर्थिक रीति से किसी को बना सकती हैं और तोड़ सकती हैं उसके हाथों में हैं । वह उन परिस्थितियों को उन लोगों की भलाई के लिए उपयोग कर सकते हैं, जिनसे वह प्रेम करते हैं । यदि वह चाहें, उनके लिए आश्चर्यकर्म कर सकते हैं - १ राजा १७:१०-१६; २ राजा ४:१-७ ।

साधारणतया वह लोगों को सामान्य तरीकों से आशीष देते हैं । लोगों और परिस्थतियों का इस्तेमाल उनकी सम्पन्नता बढ़ाने के लिए और ऐसी आपत्तियों से रक्षा करने में जो गरीबी लाती हैं, परमेश्वर करते हैं । वह यह जानते हैं कि अपनी दया किस प्रकार उण्डेलें ताकि वे आत्मिक और भौतिक रीति से तरक्की करें ।

आशीष देने के पीछे उनका उद्देश्य यह है, ताकि उनके पास दूसरों के लिए बहुत कुछ हो ।" आशीषित होने पर यदि वे ऐसा रवैया नहीं रखते तो परमेश्वर उनसे वे आशीषें छीन सकते हैं ।

९:९-१४ - आनन्द से और बड़े हृदय से देने के परिणामों का वह वर्णन करते हैं । वे इस जीवन के साथ आने वाले जीवन में भी हैं (पद ९) ।

परमेश्वर कभी उनके कार्यो को नहीं भूलेंगे (पद ९, इब्रा. ६:१० से तुलना करें) ।

परमेश्वर उन्हें भौतिक रीति से आशीष देंगे (पद १०,११) उनके द्वारा परमेश्वर के लोगों की आवश्यकताएँ पूरी होंगी (पद १२) । वे मसीह के सुसमाचार के प्रति आज्ञाकारिता का सबूत देंगे (पद १३) । अपनी प्रार्थनाओं में दूसरे लोग बड़े प्रेम से याद करेंगे (पद १४) उनके कारण परमेश्वर को धन्यवाद और स्तुति मिलेगी (११,१२,१३) ।

यह तीसरा परिणाम, जिसे तीन बार दोहराया गया है पौलुस के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण था । १:११ और ४:१५ भी देखें । प्रत्येक बात में परमेश्वर को सम्मान मिलना उसका सबसे बड़ा लक्ष्य था (१ कुरि. १०:३१) । परमेश्वर को आदर तब मिलता है, जब उसके लोग वैसा जीवन जीते हैं, जैसा जीना चाहिए, वैसी स्तुति करते हैं जैसी करनी चाहिए ।

९:१०,११ - पद ८ कहता है, कि परमेश्वर ऐसा कर सकते हैं । पौलुस कहता है, कि यदि वे खुश रहेंगे, दिल से देंगे, परमेश्वर आशीष देंगे । १ तीमु. ६:६-८ के आधार पर हमें स्वार्थ के लिए धनी नहीं होना है । यदि हम सम्पन्नता की कामना करते हैं तो इसलिए कि हम परमेश्वर और उनके लोगों के लिए अधिक कर सकें ।

९:१३ - उनके उद्धार देने से उनका प्रेम और आज्ञाकारिता दिखायी दी । न देना इसके विपरीत की स्थिति दिखाता है ।

९:१५ - मनुष्य के लिए परमेश्वर के दान अनेक और बड़े हैं (भजन. ६८:३५; १२७:२,३; १४६:७; भजन. २:६; मत्ती ७:११; यूहन्ना १४:२७; प्रेरितो. ५:३१; १४:१७; १५:८; १७:२५; रोमि. ५:१७; ६:२३; १ कुरि. ७:७; १२:७-११; इफि. २:८; फिलि. १:२९; २ तीमु. ३:१६; याकूब १:५,१७) । इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ पर पौलुस के मन में सबसे बड़ा और अवर्णनीय दान था यूहन्ना ३:१६; रोमि. ८:३२; यशा ९:६ । वह इस वरदान की ओर इशारा करता है, ताकि विश्वासी समझ सकें कि देना क्या है और जैसे परमेश्वर देते हैं, देना सीखें । यहाँ विश्वासियों के देने के सम्बन्ध में सत्य के बारे में संक्षेप में लिखा है ।

**१०** जो वर्णन से बाहर है, धन्यवाद हो । **मैं** वही पौलुस जो तुम्हारे साम्हने दीन हूं, परन्तु पीठ पीछे तुम्हारी ओर साहस करता हूँ; तुम
२ को मसीह की नम्रता, और कोमलता के कारण समझाता हूं । **मैं** यह बिनती करता हूं, कि तुम्हारे साम्हने मुझे निडर होकर साहस
३ करना न पड़े; जैसा मैं कितनों पर जो हम को शरीर के अनुसार चलनेवाले समझते हैं, वीरता दिखाने का विचार करता हूं । **क्योंकि**
४ हालांकि हम शरीर में चलते फिरते हैं, तौभी शरीर के अनुसार नहीं लड़ते । **क्योंकि** हमारी लड़ाई के हथियार मानवीय नहीं, पर
५ किलों को ढा देने के लिये परमेश्वर के द्वारा सामर्थी हैं । **इसलिए** हम कल्पनाओं को, और हर एक ऊंची बात को, जो परमेश्वर की

---

देना, परमेश्वर का दान है, जो उनके हृदय और जीवन में परमेश्वर की दया के कारण है (८:१; रोमि. १२:६-८) ।

देना एक शुभ अवसर है जिसे विश्वासियों को चाहना है (८:४) ।

***"देना हमारी आज्ञाकारिता और प्रेम की परीक्षा है"*** - न देना दिखाता है, प्रेम नहीं है । थोड़ा देना, थोड़ा प्रेम दिखाता है । अधिक देना अधिक प्रेम दिखाता है (८:८) ।

देना परमेश्वर का स्वभाव है (८:६) ।

यदि हृदय ठीक है, छोटे दान भी परमेश्वर को ग्रहणयोग्य हैं (८:१२; मरकुस १२:४१-४४) ।

देने से जिन लोगों के पास बहुत है और जो आवश्यकता में हैं, उनके बीच की खाई पट जाती है (८:१३) ।

देना परमेश्वर के लोगों की सेवा है (९:१) ।

देना, स्वतन्त्रता और प्रसन्नता से होना चाहिए (९:५,७) ।

देने के बदले में प्रतिफल है (९:६,८-११,१४) ।

देने से परमेश्वर को धन्यवाद और स्तुति मिलती है (९:११-१३) ।

दूसरों और परमेश्वर को देने के सम्बन्ध में कुछ और पद हैं - निर्गमन ३५:५-९; लैव्य. ७:१२,१३; २७:३०; गिनती १८:२१,२४; व्यव. १४:२८,२९; १५:१०; २ शमू. २४:२४; १ इति. २९:३,५,६,१४; भजन. ३७:२६; नीति. ११:२४,२५; १९:१७; २२:९; सभोप. ११:१,२; मलाकी १:७,८,१४; ३:८-१०; मत्ती ६:१,२,१९,२०; १९:२१; लूका ६:३८; प्रेरितों. २०:३५; रोमि. १२:१३; १ तीमु. ६:१८,१९; इब्रा. ६:१०; याकूब २:१५,१६; १ यूहन्ना ३:१७ ।

## अध्याय १०

१०:१ - "देखे ११:१० । १०-१३ अध्याय में पौलुस लोगों का ध्यान कुरिन्थि में झूठे शिक्षकों की ओर और जो उनकी सुनते हैं, उनकी ओर लगाता है । ये झूठे शिक्षक बिगड़ा हुआ संदेश देते थे (११:४) । वे शैतान के सेवक थे, जिन्हें शैतान ने कुरिन्थि में भेजा था ताकि विश्वासियों को गुमराह करें (११:१३,१४) । वे घमण्ड करते थे कि वे सच्चे प्रेरित हैं (११:५,१२) । उन्होंने पौलुस और उसके संदेश पर आक्रमण किया । पौलुस इस सत्य का बचाव करता है कि वह प्रेरित है । यह उसके स्वयं के लिए नहीं, किन्तु कुरिन्थि में कलीसिया की खातिर था (१२:१९) । उसे उनकी आत्मिक दशा की चिन्ता थी ११:३; १२:२०,२१ । उसने महसूस किया था कि यदि वे उसे अस्वीकार करें और यह कि परमेश्वर उसके (चुने हुए) द्वारा बोले, तो स्थिति गंभीर हो जाएगी ।

१०:१ - ***"मसीह की दीनता"*** - मत्ती ११:२९; १२:२०; यशा. ४०:११ । यीशु मसीह की तरह पौलुस ने व्यवहार किया था, एक प्रेरित के अधिकार का उपयोग करके नहीं (१३:१०) वह प्रेम से बिनती करता है ।

***"निर्भय"*** कुछ लोग कुरिन्थि में पौलुस पर कायर होने का दोष लगा रहे थे । यह भी कि वह बड़े साहस की भाषा में पत्र लिखता था ।

१०:२ - पौलुस साहस से, कठोर तरीकों का इस्तेमाल कुरिन्थि में कर सका । उसने आशा की, कि वे उस पर ऐसा करने के लिए ज़ोर नहीं डालेगे ।

***"शरीर के अनुसार"*** - लोगों द्वारा लगाया गया, यह भी एक झूठा दोष था ।

१०:३-५ - पौलुस सत्य और त्रुटि के बीच के युद्ध की ओर इशारा करता है । इसका अर्थ परमेश्वर द्वारा प्रगट किया गया सत्य और लोगों की गलतियां । संसार का लक्ष्य है, मसीह के सत्य का नाश करना । परमेश्वर के सच्चे सेवकों का कार्य है झूठ को नाश करके मनुष्यों के विचारों को मसीह की आज्ञाकारिता में लाना ।

मसीह के सेवकों के हथियार संसार के हथियारों या अस्त्रों से भिन्न हैं । विश्वासी इस संसार में हैं किन्तु सत्य से लड़ने के लिए उन्होंने दुनियावी अस्त्रों का उपयोग नहीं करना है । सांसारिक हथियार हिंसा, बल, चालाकी, जादूटोना और तर्क आदि हैं जो पापी मनुष्य के मन की उपज है । विश्वासियों के पास भी हथियार हैं (६:७; इफि. ६:१७) । किन्तु वे आत्मिक हैं । सत्य और धार्मिकता के साथ कार्य करने वाली परमेश्वर की सामर्थ पर पौलुस निर्भर करता था । परमेश्वर के आत्मा की भरपूरी ईमानदारी, प्रेम में सत्य बोलना उस परमेश्वर के महान सैनिक के हथियार थे ।

ऐसे हथियारों में ईश्वरीय सामर्थ है । उनके द्वारा वह शैतान की दुष्टता और अविश्वास के किलों को गिराना चाहता था । वह धर्म के गढ़ों, दर्शन, परमेश्वर के सत्य के विरोध के तर्क, झूठ मूठ का ज्ञान और सामर्थ को तोड़ना चाहता था । इस संसार में चलने वाला महायुद्ध, सत्य और झूठ के बीच है । पौलुस मनुष्यों के ज्ञान, विचार, प्रत्येक धार्मिक विचार को मसीह के पैर के नीचे और उसके द्वारा परखे जाने के लिए लाया । सिखाए हुए सत्य के अनुरूप और परमेश्वर के पुत्र की अधीनता में वह अपने मन और विचारों को लाया । वह चाहता था कि लोगों की सोचने की प्रक्रिया भी उन्हीं के आधीन हो । हम निश्चित हो सकते हैं कि जो 'मन' मसीह की आज्ञा मानना चाहते हैं और 'वे विचार' जिनको मसीह स्वीकार करते हैं वही उचित हैं । मनुष्यों का मन, इच्छाएँ और कार्य पापमय और बुरे हैं (रोमि. ८:६,७; इफि. ४:१८) । लोगों को आज नए मन की आवश्यकता है, जो परमेश्वर की इच्छा के अनुसार सोच सकेंगे रोमि. १२:२; इफि. ४:२३; फिलि. २:५ । मनुष्य और परमेश्वर की बुद्धि में तुलना देखें; १ कुरि. १:१७-२:१६; ३:१८-२०; कुलु. २:८ ।

६ पहिचान के विरोध में उठती हैं, खण्डन करते हैं: और हर एक भावना को कैद करके मसीह का आज्ञाकारी बना देते हैं । **और** तैयार
७ रहते हैं कि जब तुम्हारा आज्ञा मानना पूरा हो जाए, तो हर एक प्रकार की आज्ञा न मानने का पलटा लें । **तुम** उन्हीं बातों को
देखते हो, जो आंखों के साम्हने हैं, यदि किसी का अपने पर यह भरोसा हो, कि मैं मसीह का हूं, तो वह यह भी जान ले, कि जैसा
८ वह मसीह का है, वैसे ही हम भी हैं । **क्योंकि** यदि मैं उस अधिकार के विषय में और भी घमण्ड दिखाऊं, जो प्रभु ने तुम्हारे बिगाड़ने
९ के लिये नहीं पर बनाने के लिये हमें दिया है, तो लज्जित न हूंगा । **यह** मैं इसलिये कहता हूं, कि चिट्ठियों द्वारा तुम्हें डरानेवाला
१० न ठहरूं । **क्योंकि** वे कहते हैं, कि उस के पत्र तो गम्भीर और प्रभावशाली हैं; परन्तु जब जब वह साम्हने होता है, तो वह देह
११ का निर्बल और सिखाने में हल्का जान पड़ता है । **सो** जो ऐसा कहता है, वह यह समझ रखे, कि जैसे पीठ पीछे चिट्ठियों में हमारे
१२ वचन हैं, वैसे ही तुम्हारे साम्हने हमारे काम भी होंगे । **क्योंकि** हमें यह हिम्मत नहीं कि हम अपने आप को उन में से ऐसे कितनों
के साथ गिनें, या उन से अपने को मिलाएं, जो अपनी प्रशंसा करते हैं, और अपने आप को आपस में नाप तौलकर एक दूसरे से
१३ मिलान करके मूर्ख ठहरते हैं । **हम** तो सीमा से बाहर घमण्ड बिल्कुल नहीं करेंगे, परन्तु उसी सीमा तक जो परमेश्वर ने हमारे लिये
१४ ठहरा दी है; और उस में तुम भी आ गए हो और उसी के अनुसार घमण्ड भी करेंगे । **क्योंकि** हम अपनी सीमा से बाहर अपने
आप को बढ़ाना नहीं चाहते, जैसे कि तुम तक न पहुंचने की दशा में होता, वरन् मसीह का सुसमाचार सुनाते हुए तुम तक पहुंच
१५ चुके हैं । **हम** सीमा से बाहर दूसरों के परिश्रम पर घमण्ड नहीं करते; परन्तु हमें आशा है, कि ज्यों ज्यों तुम्हारा विश्वास बढ़ता
१६ जाएगा त्यों त्यों हम अपनी क्षेत्र की सीमाओं के अनुसार तुम्हारे कारण और भी बढ़ते जाएंगे । **कि** हम तुम्हारे सिवानों से आगे
१७ बढ़कर सुसमाचार सुनाएं, और यह नहीं, कि हम औरों की सीमा के भीतर बने बनाए कामों पर घमण्ड करें । **परन्तु** जो घमण्ड
१८ करे, वह प्रभु पर घमण्ड करे । **क्योंकि** जो अपनी बड़ाई करता है, वह नहीं, परन्तु जिस की बड़ाई प्रभु करता है,
**११** वही स्वीकार किया जाता है । **यदि** तुम मेरी थोड़ी मूर्खता सह लेते तो क्या ही भला होता; हां, मेरी सह भी लेते हो ।
२ **क्योंकि** मैं तुम्हारे विषय में ईश्वरीय धुन लगाए रहता हूं, इसलिये कि मैं ने एक ही पुरूष से तुम्हारी बात लगाई है, कि तुम्हें पवित्र कुंवारी
३ की नाईं मसीह को सौंप दूं। **परन्तु** मैं डरता हूं कि जैसे सांप ने अपनी चतुराई से हव्वा को बहकाया, वैसे ही तुम्हारे मन उस सीधाई और पवित्रता
४ से जो मसीह के साथ होनी चाहिए, कहीं भ्रष्ट न किए जाएं । **यदि** कोई तुम्हारे पास आकर, किसी दूसरे यीशु का संदेश दे जिसे

---

१०:६ - पौलुस उन्हें अवसर देना चाहता था ताकि वे सत्य के प्रति आज्ञाकारी हों । अन्त में वे पाएंगे कि उसे यह अधिकार है कि अनाज्ञाकारिता को दण्डित करें । तुलना करें १३:१०; १ कुरि. ४:२१; ५:३-५ ।

१०:७ - पद १२; ५:१२

१०:८ - ***"घमण्ड"*** - १:१२ में नोट्स देखें ।

१०:१० - पद १ । ऐसा लगता है कि लोगों ने यह सोचा कि पौलुस अच्छा वक्ता नहीं था और ज्ञान भी कम था (११:६) । यह भी कि सच्चाई सामने रखने में नम्र और दीन था । जब उन्होंने कहा कि उसके पत्र "भारी और सामर्थी" हैं, तो यह सत्य था ।

१०:१२ - यदि लोग दूसरों से अपनी तुलना करें तो उसमें पूरी ईमानदारी नहीं होती है । वे अपनी प्रशंसा की ही बात देखेंगे । किन्तु पौलुस ने यह खेल नहीं खेलना चाहा । वह जानता था कि तुलना के लिए एक और ऊँचा स्तर है । मसीह हमारे लिए आदर्श हैं, यदि उनसे हम तुलना करें तो कोई भी अपने आप को ऊँचा नहीं समझेगा ।

१०:१३,१४ - ***"घमण्ड"*** - १:१२

***"सीमा"*** - यह प्रेरित, सुसमाचार देने वाले और शिक्षक की सेवा के बारे में कहा जा रहा है । उसकी सेवा की सीमा कुरिन्थि तक पहुँची थी । वह प्रथम था जो सुसमाचार के साथ वहाँ गया, कलीसिया स्थापित की (१ कुरि. ४:१४,१५; ९:२) ।

१०:१५ - झूठे प्रेरित (पद १३) जो कुरिन्थि आए थे वे कलीसिया को लेकर उसे अपना कहना चाहते थे । ऐसा झूठे शिक्षकों के साथ होता है । कुरिन्थि में अपने कार्य के सम्बन्ध में पौलुस घमण्ड नहीं कर रहा था ।

१०:१६ - पौलुस ने आशा की थी कि कलीसिया इतनी मजबूत हो जाएगी कि वह अपना समय और बल दूसरे स्थानों में जाने के लिए उपयोग करेगा । रोमि. १५:२०-२२ से तुलना करें ।

१०:१७ - यिर्म ९:२४; १ कुरि. १:३१ ।

१०:१८ - पद १२ । झूठे शिक्षक अपनी वाह-वाह के साथ-साथ दूसरों से प्रशंसा चाहते थे (३:१) । यूहन्ना ५:४४ से तुलना करें । पौलुस वह प्रशंसा चाहता था जो केवल परमेश्वर से मिलती है (१ कुरि. ४:३-५; गल. १:१०; १ थिस्स. २:४) ।

## अध्याय ११

११:२ - ***"धुन"*** - वह आत्मिक विषय पर बात कर रहा है । कुछ लोग कुरिन्थि में, झूठे शिक्षकों की बात सुन रहे थे । उसे डर था कि वे सिखाए गए सत्य को छोड़ देंगे । 'धुन' शब्द उस प्रेम को दिखाता है जो उसके हृदय में उनके प्रति था । उन मसीहियों को अपने लिए नहीं रखना मांगता था, न ही अपनी प्रशंसा के लिए । मसीह के साथ उनका जो सम्बन्ध था, उसके प्रति उसको चिन्ता थी ।

***"पति"*** - मत्ती २२:१,२; यूहन्ना ३:२९; रोमि. ७:१-४; इफि. ५:२४-३३; प्रका. १९:६-९ तुलना करें भजन. ४५:६-१५; यशा. ५४:५; यिर्म ३:१४,२०; होशे. २:१६,१९ ।

११:३ - उत्पत्ति ३:१-७ । यह सही है कि पौलुस आदम नहीं किन्तु हव्वा की बात करता है क्योंकि हव्वा प्रथम आदम की दुल्हन थी और कलीसिया आखिरी आदम की दुल्हन (१ कुरि. १५:४५) । हव्वा ने धोखा खाया, आदम ने नहीं (१ तीमु. २:१४) । कुरिन्थि में विश्वासी जिन बातों का साम्हना कर रहे थे वह शैतानी धोखा था (पद १३-१५) ।

११:४,५ - पौलुस उन कारणों को देता है जिनकी वजह से वह वहाँ के कुछ मसीहियों से डरा हुआ था । उनके पास सत्य के लिए प्रेम की कमी थी और गलती को पहचानने की योग्यता भी । वे झूठे शिक्षकों के विरोध में खड़े होने की दशा में नहीं थे ।

हम ने नहीं दियाः या कोई और आत्मा तुम्हें मिले; जो पहिले न मिला था; या और कोई सुसमाचार जिसे तुम ने पहिले न माना था,
५,६ तो तुम्हारा सहना ठीक होता । **मैं** तो समझता हूं, कि मैं किसी बात में बड़े से बड़े प्रेरितों से कम नहीं हूं । **यदि** मैं बोलने में
७ अनाड़ी हूं तौभी ज्ञान में नहीं; वरन् हम ने इस को हर बात में सब पर तुम्हारे लिये प्रगट किया है । **क्या** इस में मैंने कुछ पाप किया;
८ कि मैं ने तुम्हें परमेश्वर का सुसमाचार मुफ्त में सुनाया; और अपने आप को नीचा किया, कि तुम ऊंचे हो जाओ ? **मैं ने** और
९ कलीसियाओं को लूटा अर्थात् मैं ने उन से मज़दूरी ली, ताकि तुम्हारी सेवा करूं । **जब** मैं तुम्हारे साथ था, और मुझे घटी हुई, तो
मैं ने किसी पर भार नहीं दिया, क्योंकि भाइयों ने मकिदुनिया से आकर मेरी घटी को पूरा कियाः और मैं ने हर बात में अपने आप
१० को तुम पर भार होने से रोका, और रोके रहूंगा । **यदि** मसीह की सच्चाई मुझ में है, तो अखया देश में कोई मुझे घमण्ड से न
११,१२ रोकेगा । **किस लिये** ? क्या इसलिये कि मैं तुम से प्रेम नहीं रखता ? परमेश्वर यह जानते हैं । **परन्तु** जो मैं करता हूं, वही
करता रहूंगा; कि जो लोग दांव ढूंढ़ते हैं, उन्हें मैं दांव पाने दूं, ताकि जिस बात में वे घमण्ड करते हैं, उस में वे हमारे ही समान ठहरें ।
१३,१४ **क्योंकि** ऐसे लोग झूठे प्रेरित, और छल से काम करनेवाले, और मसीह के प्रेरितों का रूप धरनेवाले हैं । **और** यह कुछ

---

वे उनको इतना सह रहे थे, कि पौलुस को भी आश्चर्य हो रहा था । वह जानता था कि झूठे शिक्षकों को सहना सत्य के प्रति प्रेम की कमी को दिखाता है । प्रत्येक धार्मिक शिक्षक जिसके पास, एक या दूसरी तरह की आत्मा है, एक तरह की सामर्थ है या दूसरे तरह की, परमेश्वर की आत्मा या सामर्थ नहीं है । प्रत्येक जो सुसमाचार दे रहा है, मसीह का सत्य सुसमाचार नहीं दे रहा है (गल. १:६-९; १ यूहन्ना ४:१) । उन प्रेरित कहलाने वालों को मज़ाक से वह ***'सुपर प्रेरित'*** कहता है, क्योंकि वे बड़े-बड़े दावे कर रहे थे ।

११:६ - ***"बोलने में"*** - १०:१०; १ कुरि. २:१-५ ।
***'ज्ञान में"*** - १ कुरि. २:६-१६; गल. १:११,१२ ।

११:७-१२ - १ कुरि. ९:४-१५ देखें । शायद उसके शत्रुओं ने कहा था, कि पौलुस ने वहाँ की कलीसिया से किसी प्रकार का सहयोग नहीं लिया, क्योंकि वह जानता था कि वह सच्चा प्रेरित नहीं हैं और सहायता के योग्य भी नहीं । यह भी कि अपनी जीविका (प्रेरितों १८:३) के लिए अपने हाथों से कार्य करना एक सच्चे प्रेरित की इज्ज़त के लिए ठीक नहीं था । किन्तु पौलुस कहता है कि वह उनसे प्रेम करता है (पद ११) । वह उनकी तरक्की देखना चाहता है (पद ७) ।

११:८ - ***"लूटा"*** - पौलुस ने वास्तव में ऐसा नहीं किया था । उसने दूसरी कलीसियाओं से आर्थिक सहायता माँगी नहीं थी । जब उन्होंने सहायता करनी चाही, उसने मना भी नहीं किया । कभी-कभी सहायता करने वाले स्वयं निर्धन थे । उसको ऐसा लगा कि निर्धन मसीहियों से आर्थिक सहायता प्राप्त करके, धनी मसीहियों की सेवा करना, निर्धन मसीहियों को लूटने के समान था (८:१४) ।

११:९ - कभी-कभी पौलुस ने विश्वासियों से आर्थिक सहायता प्राप्त की थी । किन्तु ऐसा लगता है कि जब कभी वह किसी कलीसिया में उपस्थित होकर सेवा करता था, उसने आर्थिक सहयोग नहीं लिया ।

११:१० - १ कुरि. ९:१५-१८ ।

११:१२ - इसमें कोई सन्देह नहीं, कुरिन्थि में झूठे प्रेरित मसीहियों से संदेश देने के पैसे लेते थे (२:१७) । वे यह सोचना चाहते थे, कि वे पौलुस के समान हैं, किन्तु पौलुस दिखाता है कि मुफ्त में संदेश सुनाने में वे उसके बराबर नहीं थे । उसने यह निर्णय भी किया, कि वह उनको यह दिखा देगा ।

११:१३-१५ - परमेश्वर के आत्मा की प्रेरणा से पौलुस कुरिन्थि के झूठे धार्मिक शिक्षकों की पोलपट्टी खोलता है । मसीह के नाम से आने वाले हर युग के हर स्थान के ऐसे लोगों की भी । वह उनके बारे में छः बातें बताता है ।

वे ***"झूठे"*** हैं - वे कहते हैं, कि परमेश्वर ने उन्हें भेजा है, किन्तु ऐसा नहीं है (प्रका. २:२; यिर्म. २३:२१) से तुलना करें ।

वे ***"धोखा देने वाले कार्यकर्ता"*** हैं - उनके तरीके और संदेश, धोखाधड़ी के हैं और उनका उद्देश्य है दूसरों को ठगना (मत्ती २४:११,२४; रोमि. १६:१८; २ थिस्स. २:९,१०) ।

वे बाहर से कुछ और दिखते हैं । वे इस प्रकार का दिखावा करते हैं कि मसीह ने उन्हें भेजा है । किन्तु उनके दुष्ट हृदय बदले नहीं है ।

वे शैतान के सेवक हैं (पद १५; यूहन्ना ८:४४; २ थिस्स. २:९; १ तीमु. ४:१,२) । वे धार्मिकता के सेवक होने का ढ़ोंग करते हैं - वे धार्मिकता की बातें कहते हैं, किन्तु वे सच में पाप के सेवक हैं (२ पत. २:१८,१९ । २ पत. का दूसरा अध्याय और यहूदा का पत्र झूठे धार्मिक शिक्षकों के विषय में ही बताता है) ।

उनके कामों के आधार पर परमेश्वर उनका न्याय करेंगे (२ थिस्सु. २:८; २ पत. २:३,९; यहूदा १३; मत्ती ६:२२, २३) ।

कुछ कुरिन्थि के विश्वासी ऐसे लोगों की बातें सुन रहे थे । वे उनको धन मुहैया करा रहे थे । वे उनकी शिक्षा को सह रहे थे । क्या हम पौलुस की चेतावनी समझ नहीं सकते है ? क्या ऐसा हो सकता है कि लोग शैतान के सेवकों का स्वागत करें और उनके जीवन में नुकसान न हो? क्या ऐसा करने वालों के आत्मिक जीवन के सम्बन्ध में सन्देह नहीं उठेगा ?

११:१४ - शैतान अपने आप को शैतान के रूप में प्रगट नहीं करता है । वह पाप दुष्टता और बुराई दिखने भी नहीं देता है । वह अपने आप को चमकता हुआ, बुद्धि से भरा और आकर्षक दिखाता है । वह एक ईश्वर के रूप में आता है । वह परमेश्वर के वचन के इन्कार किए जाने को ऐसा रखता है, कि वह सही लगता है । वह पाप को धार्मिकता के स्वरुप में प्रगट करता है । वह सारे संसार

१५ अचम्भे की बात नहीं क्योंकि शैतान आप भी ज्योतिर्मय स्वर्गदूत का रूप धारण करता है। **इसलिए** यदि उसके सेवक भी धार्मिकता के
१६ सेवकों का सा रूप धरें तो कुछ बड़ी बात नहीं परन्तु उन का न्याय उन के कामों के अनुसार होगा। **मैं** फिर कहता हूं, कोई मुझे
१७ बेवकूफ न समझे; नहीं तो बेवकूफ ही समझकर मेरी सह ले, ताकि थोड़ा सा मैं भी घमण्ड करूं। **इस** बेधड़क घमण्ड से बोलने
१८ में जो कुछ मैं कहता हूं वह प्रभु की आज्ञा के अनुसार नहीं पर मानो मूर्खता से ही कहता हूं। **जब** कि बहुत लोग शरीर के अनुसार
१९,२० घमण्ड करते हैं, तो मैं भी घमण्ड करूंगा। **तुम** तो समझदार होकर आनन्द से मूर्खों की सह लेते हो। **क्योंकि** जब तुम्हें
कोई गुलाम बना लेता है, या खा जाता हैं, या फंसा लेता है, या अपने आप को बड़ा बनाता है, या तुम्हारे मुंह पर थप्पड़ मारता
२१ है, तो तुम सह लेते हो। **मेरा** कहना अनादर ही की रीति पर है, मानो कि हम निर्बल से थे; परन्तु जिस किसी बात में कोई हिम्मत
२२ करता है, मैं मूर्खता से कहता हूं तो मैं भी हिम्मत करता हूं। **क्या** वे ही इब्रानी हैं ? मैं भी हूं: क्या वे ही इस्राएली हैं ? मैं भी हूं :
२३ क्या वे ही इब्राहीम के वंश हैं ? मैं भी हूं। **क्या** वे ही मसीह के सेवक हैं ? मैं पागल की नाईं कहता हूं कि मैं उन से बढ़कर हूं।
२४ अधिक मेहनत करने में; बार बार कैद होने में; कोड़े खाने में; बार बार मौत के जोखिमों में। **पांच** बार मैं ने यहूदियों के हाथ से उन्तालीस
२५ उन्तालीस कोड़े खाए। **तीन** बार मैं ने बेंतें खाईं; एक बार पत्थरवाह किया गया; तीन बार जहाज़ जिन पर मैं चढ़ा था, टूट गए; एक
२६ रात दिन में ने समुद्र में काटा। **मैं** बार बार यात्राओं में; नदियों के जोखिमों में; डाकुओं के जोखिमों में; अपने जातिवालों से जोखिमों
में; अन्यजातियों से जोखिमों में; नगरों में के जोखिमों में; अन्यजातियों से जोखिमों में; नगरों में के जोखिमों में; जंगल के जोखिमों में;
२७ झूठे भाइयों के बीच जाखिमों में रहा। **परिश्रम** और कष्ट में; बार बार जागते रहने में;भूख-पियास में; बार बार उपवास करने

---

को उलट पुलट कर देना चाहता है। वह सत्य को झूठ के रूप में और झूठ को सत्य के रूप में लाता है। अंधेरे को प्रकाश और प्रकाश को अंधियारे के समान रखता है। उसकी सहायता करने के लिए बहुत से लोग हैं। ऐसे लोगों पर परमेश्वर दण्ड की घोषणा करते हैं यशा. ५:२०। १ इति. २१:१; मत्ती ४:१; यूहन्ना ८:४४ में शैतान पर नोट्स देखें।

११:१६-२१ - कहीं भी पौलुस अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करता। बिना परमेश्वर की दया और सामर्थ के वह कुछ नहीं था, यह वह जानता था - १२:११; ७:१८; इफि. ३:८; १ तीमु. १:१५। स्वयं की बड़ाई करने से वह नफरत करता था। इसलिए वह मूर्ख लगता था। कुरिन्थि के मसीहियों की खातिर उसे अपनी प्रेरिताई के लिए बचाव करना पड़ा (१२:१६)। ऐसा वह तब कर सका, जब उसने बताया कि परमेश्वर ने उसे समर्थ किया कि वह यह सब करे और दुःख उठाए।

११:१६,२१ - उनको शर्मिन्दा करने के लिए वह हास्यपूर्ण शब्दों में कहता है। वे लोग तो झूठे शिक्षकों के घमण्ड को सहते रहे थे, इसलिए उन्हें मसीह के सच्चे प्रेरित की कुछ घमण्ड की बातों को सहना ही चाहिए। झूठे शिक्षकों के कार्यों के बारे में हम पद २० में पढ़ते हैं।
***''गुलाम बना लेता है''*** शायद इसका अर्थ यह था कि वे लोग मसीहियों को मूसा की व्यवस्था में लाने का प्रयत्न कर रहे थे (प्रेरित. १५:१; गल. २:४ से तुलना करें)। किसी भी प्रकार की गलत शिक्षा के प्रभाव में होना गुलामी है।

११:२१ - ***''घमण्ड''*** - १:१२ के नोट्स देखें।

११:२२ - यह भी इस बात का प्रमाण है कि वहाँ पर झूठे भविष्यद्वक्ता यहूदी थे, जो मसीह के शिष्य होने का दावा करने के साथ-साथ उद्धार के लिए मूसा की व्यवस्था के पालन पर ज़ोर डालते थे। उन्हें इस बात का घमण्ड था कि इब्राहीम उनका मूल था। यह भी कि वे रूढ़िवादी समाज से थे। अपनी मूल भाषा इब्रानी में वचन पढ़ सकते थे (प्रेरित. ६:१ पर नोट्स देखे)। किन्तु पौलुस दावा करता है, कि ये सब बातें उसके पास थीं (रोमि. ११:१; फिलि. ३:५)।

११:२३-२६ - वे दावा करते थे कि मसीह के सेवक हैं (पद २३)। पौलुस ने इस बात का पहले से इन्कार दिया था (पद १३-१५)। वह इस बात को दोहराता नहीं है। दूसरे शिक्षकों की तुलना में वह मसीह के सेवक होने के अनेक सबूत दिखाता है। सबूत तीन प्रकार के थे - मसीह के लिए उसका परिश्रम (पद २३,२६,२७), मसीह के लिए उसके दुःख (पद २३-२७), मसीह के लोगों के लिए उसके द्वारा की गयी देखरेख (पद २८,२९)।

११:२३ - ***''अधिक मेहनत करने में''*** - रोमि. १५:१९; १ कुरि. ४:१२; कुलु. १:२९। पौलुस इसे अपनी सूची में पहला स्थान देता है। वह यह जानता था कि सच्चे मसीही सेवक का प्रमाण उसकी बातों में नहीं, लेकिन कार्यों में है। मसीह के लिए किसी के प्रेम का सबूत इसमें है, कि वह उनके लिए कितना कठिन परिश्रम करने के लिए तैयार है।
***''बार बार कैद होने में''*** ऐसा विश्वास किया जाता है कि पौलुस सात बार जेल में डाला गया था।
***''मौत'*** - १:८,९; २:११,१२

११:२४ - व्यवस्था के अनुसार कोड़े को ४० से अधिक बार नहीं मारा जाता था। व्यव. २५:१-३। साधारणतया यहूदी ३९ कोड़े मारा करते थे - वे इस बात से डरते थे कि कहीं गलती से ४० के बजाए ४१ न हो जाए और व्यवस्था का उल्लंघन हो जाए, इसलिए ३९ बार ही मारा करते थे। ये कोड़े मारा जाना बहुत गंभीर हुआ करता था और कभी-कभी लोग इससे मर भी जाया करते थे। मसीह के लिए किसी व्यक्ति का प्रेम इससे नापा जाता था, कि वह कितना दुःख उठाने के लिए तैयार है।

११:२५ - ***''पत्थरवाह किया गया'',*** प्रेरित. १४:१९,२०
***''जहाज टूट गए''*** - (प्रेरित. २७:२७-४४) में एक का वर्णन है। बहुत से वे दुःख, परेशानी, जिसमें से होकर पौलुस गया, उनका वर्णन वचन में नहीं हैं।

११:२६ - ***''जोखिमों में''*** मसीह के लिए एक व्यक्ति क्या सहने के लिए तैयार है, उससे उसके मसीह के प्रति प्रेम को मापा जा सकता है। कुरिन्थि में झूठे शिक्षक घमण्ड की बातें कह सकते थे। उन्होंने क्या-क्या सहा था? मसीह के लिए वे कौन-कौन से खतरे झेलने के लिए तैयार थे?

११:२७ - ***''बार-बार जागते रहने से''*** - प्रायः उसके पास सोने के लिए उचित स्थान नहीं होता था। अनेक दबाव और बोझ उसे नींद नहीं आने देते थे।

२८ में; जाड़े में; उघाड़े रहने में । **और** और बातों को छोड़कर जिन का वर्णन मैं नहीं करता, सब कलीसियाओं की चिन्ता प्रतिदिन
२६,३० मुझे दबाती है । **किस** की निर्बलता से मैं निर्बल नहीं होता ? किस के ठोकर खाने से मेरा जी नहीं दुखता ? **यदि** घमण्ड करना
३१ अवश्य है, तो मैं अपनी कमज़ोरियों की बातों पर करूंगा । **प्रभु** यीशु के परमेश्वर और पिता जो सदा धन्य हैं, जानते हैं, कि मैं
३२ झूठ नहीं बोलता । **दमिश्क** में अरितास राजा की ओर से जो हाकिम था, उस ने मेरे पकड़ने को दमिश्कियों के नगर पर पहरा
३३ बैठा रखा था । **और** मै टोकरे में खिड़की से होकर दीवार पर से उतारा गया, और उसके हाथ से बच निकला ।
**१२** **हालांकि** घमण्ड करना तो मेरे लिये ठीक नहीं तौभी करना पड़ता है; सो मैं प्रभु के दिए हुए दर्शनों और प्रकाशों की चर्चा करूंगा ।
२ **मैं** मसीह में एक मनुष्य को जानता हूं, चौदह वर्ष हुए कि न जाने देहसहित, न जाने देहरहित, परमेश्वर जानते हैं, ऐसा मनुष्य तीसरे
३ स्वर्ग तक उठा लिया गया । **मैं** ऐसे मनुष्य को जानता हूं न जाने देहसहित, न जाने देहरहित परमेश्वर ही जानते हैं ।
४ **कि** स्वर्ग लोक पर उठा लिया गया, और ऐसी बातें सुनीं जो कहने की नहीं; और जिन का मुंह पर लाना मनुष्य को उचित नहीं ।
५ **ऐसे** मनुष्य पर तो मैं घमण्ड करूंगा, परन्तु अपने पर अपनी निर्बलताओं को छोड़, अपने विषय में घमण्ड न करूंगा ।
६ **क्योंकि** यदि मैं घमण्ड करना चाहूं भी, तो मूर्ख न हूंगा, क्योंकि सच बोलूंगा; तौभी रुक जाता हूं, ऐसा न हो, कि जैसा कोई मुझे
७ देखता है, या मुझ से सुनता है, मुझे उस से बढ़कर समझे । **इसलिए** कि मैं प्रकाशों की बहुतायत से फूल न जाऊं, मेरे शरीर में एक

---

***"भूख" "प्यास", "बिना कपड़े के"*** - रोमि. ८:२८,३५-३७ । वह अनुभव की बात कर रहा था । जो क्लेश उसने सहे, उनके द्वारा उसने अपनी प्रेरिताई सिद्ध की । क्या वह अपने जीवन को और अधिक सुरक्षित और आरामदायक नहीं बना सकता था । अवश्य, यदि उसने लोगों और मण्डलियों से सहायता माँगकर उपलब्ध स्थानों, होटलों और उत्तम भोज्य पदार्थो को प्राप्त किया होता । यदि वह वहीं जाता, जहाँ जाना आसान था और जहाँ लोग पहले से उसके आने का प्रबन्ध करते थे ।

किन्तु वह उन सब बातों में दिलचस्पी नहीं ले रहा था (प्रेरित २०:२४) । वहाँ के लोगों तक वह पहुँचना चाहता था, जहाँ तमाम सुविधाएँ नहीं थीं । मसीह के लिए दुःख उठाना वह एक आशीष समझता था, न कि कोई बुरी बात । ४:१७; रोमि. ८:१७; फिलि. १:२६; ३:१०; कुलु. १:२४

११:२८ - ***"सब कलीसियाओं"*** केवल कुरिन्थि वाली ही नहीं, न वे दूसरी, जिनकी स्थापना उसने जगह-जगह की थी, वे भी जिन्हें उसने कभी देखा भी नहीं था (कुलु. २:१) । सभी कलीसियाएँ मसीह और पृथ्वी पर मसीह के सम्मान से जुड़ी हुयी थीं । इसलिए अपने मन में

११:२६ - वह सबसे जुड़ा हुआ था । एक कलीसिया की चिन्ता एक पास्टर को कुचल सकती है । पौलुस को सभी कलीसियाओं की चिन्ता थी । वह मात्र कलीसियाओं के प्रति चिन्तित नहीं था, वह लोगों के प्रति चिन्तित था ।

***"निर्बलता"*** - रोमि. १४:१; १५:१; १ कुरि. ६:२२ ।

***"दुःखता"*** - जब लोगों ने विश्वासियों को ठोकर खिलायी तब पौलुस को बहुत पीड़ा हुयी । रोमि. १२:१५ और गल. ६:२ में उसने अपने शब्दों को पूरा किया । जो कुछ उन्होंने महसूस किया, उसका दुख उसे भी हुआ । यह सच है कि यह सब करने के लिए मसीह ने उसे सिखाया और योग्य किया ।

११:३० - ***"निर्बलता"*** - १२:५,६,१०

११:३१ - ''कुरिन्थि में कुछ लोगों के लिए पौलुस की समस्याएँ विश्वास करने योग्य नहीं थी । इसलिए वह गंभीरता से परमेश्वर के नाम में आश्वासन के साथ कहता है, कि ये सब बातें सत्य हैं ।

११:३२,३३ - प्रेरित. ६:२२-२५ यह एक उदाहरण हैं जहाँ वह अपनी कमज़ोरियों के लिए घमण्ड करता है । वह चाहता था कि वे समझें कि वह अपने बल पर घमण्ड नहीं करता है, किन्तु प्रभु पर जिसने उसे योग्य बनाया कि सब कुछ सह सके (३:५; ४:७) ।

## अध्याय १२

१२:१ - अपनी ***"कमज़ोरियों में"*** घमण्ड करने को, पौलुस कोई बड़ी बात नहीं समझता । किन्तु उसके पास और कोई चुनाव भी नहीं था - पद ११,१६ । ऐसा ही वह अपने दर्शनों और प्रकाशनों के बारे में सोचता है । किन्तु यदि कुरिन्थि में झूठे शिक्षक अपने दर्शनों और प्रकाशनों का घमण्ड कर रहे थे, तो वहाँ के मसीहियों के लिए । उत्प. १५:१; गिनती १२:६ ।

१२:२-५ - क्या पौलुस अपने बारे में यहाँ कह रहा था ? हाँ, देखें पद ७ । वह सीधे अपने बारे में न कहकर किसी ***'व्यक्ति'*** के बारे में क्यों कहता है ? संभवतः क्योंकि उसकी दुर्बलता से कुछ लेना देना नहीं, वह मात्र उसी में घमण्ड करना चाहता है । शायद इसलिए कि उसके साथ कुछ अजीब घटना घटी और वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या हो रहा है, वह मात्र एक दर्शक के समान था ।

१२:४ - ***"स्वर्गलोक"*** यही तीसरा स्वर्ग है (पद २) । कुछ यहूदी सिखाते थे कि सात स्वर्ग हैं । परमेश्वर के वचन बाईबल में ऐसा कुछ नहीं सिखाया गया है । ***"तीसरे स्वर्ग"*** से पौलुस का अर्थ था सबसे ऊँचा स्वर्ग, आत्मिक स्वर्ग, परमेश्वर का निवास स्थान, स्वर्गलोक । न्यूटेस्टामॅन्ट में शब्द स्वर्गलोक तीन बार आया है यहाँ लूका २३:४३ और प्रका. २:७ में । पौलुस ने वहाँ ऐसी बातों को सुना, जिन्हें कहने की अनुमति उसे नहीं थी । व्यव. २६:२६; प्रका. १०:३,४ से तुलना करें ।

१२:६ - जो कुछ वे देखते और सुनते थे, उसके आधार पर वे उसके बारे में और उसकी प्रेरिताई के बारे में वे अपना मत बनाएँ, वह यह चाहता था । उसके आत्मिक अनुभवों से नहीं जिनकी पुष्टि नहीं की जा सकती थी ।

१२:७ - इससे मालूम होता है कि पद २-५ में वह अपने बारे में कह रहा है । लोग घमण्ड और धोखे में पड़ गए, क्योंकि वे सोचते थे, कि पौलुस द्वारा देखे गए दर्शन और पाए हुए प्रकाशन से कही कम के दर्शन और प्रकाशन उनके थे । पौलुस को जो कुछ प्रभु ने दिखाया, उसके सम्बन्ध में घमण्डी हो जाना उसके लिए स्वाभाविक था । परमेश्वर के पास किसी प्रेरित या किसी और व्यक्ति को घमण्ड से बचाने का तरीका था । पौलुस का ***'काँटा'*** क्या था? हम उतना ही जानते हैं, जितना हमें बताया गया है । भाषा कठिन है । अलग-अलग मत ऐसे हैं ।

८ कांटा चुभाया गया अर्थात् शैतान का एक दूत कि मुझे घूँसे मारे ताकि मैं घमण्डी न हो जाऊं। **इस के** विषय में मैं ने प्रभु से तीन
९ बार बिनती की, कि मुझ से यह दूर हो जाए। **और** उस ने मुझ से कहा, मेरा अनुग्रह तेरे लिये बहुत है; क्योंकि मेरी सामर्थ निर्बलता
में सिद्ध होती है; इसलिये मैं बड़े आनन्द से अपनी निर्बलताओं पर घमण्ड करूंगा, कि मसीह की सामर्थ मुझ पर छाया करती रहे।
१० **इस** कारण मैं मसीह के लिये निर्बलताओं, और निन्दाओं में, और दरिद्रता में, और उपद्रवों में, और संकटो में प्रसन्न हूं; क्योंकि
११ जब मैं निर्बल होता हूं, तभी बलवन्त होता हूं। **मैं** मूर्ख तो बना, परन्तु तुम ही ने मुझ से यह जबरदस्ती करवायाः तुम्हें तो मेरी
१२ प्रशंसा करनी चाहिए थी, क्योंकि हालांकि मैं कुछ भी नहीं, तौभी उन बड़े से बड़े प्रेरितो से किसी बात में कम नहीं हूं। **प्रेरित** के
१३ लक्षण भी तुम्हारे बीच सब प्रकार के धीरज सहित चिन्हों, और अदभुत् कामों, और सामर्थ के कामों से दिखाए गए। **तुम** कौन
सी बात में और कलीसियाओं से कम थे, केवल इस में कि मैं ने तुम पर अपना भार न रखाः मेरा यह अन्याय क्षमा करो।

---

१. कुछ का कहना है, कि ***'शरीर'*** का अर्थ देह हो सकती है और ***'काँटा'*** एक बीमारी या शारीरिक समस्या।

२. कुछ कहते है, कि ***'शरीर'*** का अर्थ पापी स्वभाव हो सकता है, जिसके बारे में रोमि ७:१४-२५ में लिखा हैं। इस यूनानी शब्द का अर्थ पतित स्वभाव भी हो सकता है रोमि. ७:५,१८। यदि ऐसा है तो यह एक ज़ोरदार प्रलोभन या बुरी सलाह थी जो उसके मन में आती थी, जिसने उसे घमण्ड करने से रोका।

३. गिनती की पुस्तक (३३:५५) में काँटा शब्द उन मनुष्यों के लिए उपयोग किया गया है, जो इस्राएलियों को पीड़ा देने वाले थे। पेन्टिकास्टल-कैरिस्मैटिक लोग इस काँटे को ऐसे लोग समझते हैं जो यीशु के लोगों को सताते हैं। वे यह नहीं मानते कि काँटा एक बीमारी थी।

यहाँ पर यूनानी शब्द ***'संदेशवाहक'*** दूसरे स्थानों में स्वर्गदूत भी कहा गया है। यह शायद शैतान (दुष्टआत्मा) द्वारा लाया गया था। जिसने उसका विरोध किया था उसकी कमज़ोरी के दायरे में उसके सामने परीक्षा खड़ी थी।

***'काँटे'*** से उसे बहुत तकलीफ हुयी। शारीरिक, मानसिक या आत्मिक या तीनों, यह स्पष्ट नहीं है। पौलुस के अनुभव की तुलना अय्यूब १:६-३-२६ से करें।

१२:८ - कष्ट इतना अधिक था, कि उसने उसे हटाने की याचना की।

***"तीन बार"*** मत्ती २६:४४; यूहन्ना १३:३८; २१:१७; प्रेरित. १०:१६ से तुलना करें। जैसा वह चाहता था, उस प्रकार से प्रार्थना का उत्तर नहीं मिला।

१२:९ - परमेश्वर ने उसे एक प्रतिज्ञा दी। साथ में यह भी बताया कि यदि वह मसीह में बलवान होना चाहता था, तो अपने आप में दुर्बल होने के साथ, अपनी कमज़ोरी को जानना आवश्यक था। प्रतिज्ञा यह थी कि वह उसे सहने के साथ आत्मिक लाभ उठाने में सहायता करेंगे। परमेश्वर कभी भी कोई दर्द, खतरा, बोझ आदि हमारे रास्ते में बिना शक्ति दिए हुए नहीं आने देंगे। प्रत्येक युग में, हर स्थिति में उनकी सहायता मिलेगी।

***"इसलिए"*** - शारीरिक निर्बलता में प्रभु यीशु की शक्ति सहायक होती है, यह पौलुस ने सीख लिया। इसलिए कि उसकी इच्छा यह थी कि मसीह की शक्ति उस पर रहे (फिलि ३:१०)। प्रत्येक उस बात को वह सहने के लिए तैयार था, जो उसे कुछ सिखा सकती थी।

१२:१० - ***"मसीह के लिए"*** *शब्दों पर ध्यान दें* - उसका पूरा जीवन और सेवा मसीह के लिए थे, उसके स्वयं के लिए नहीं। इसी कारणवश उसने सब कुछ सह लिया।

***"प्रसन्न हूँ" "मज़ा ले रहा हूँ"*** - बहुत से मसीही सोचते है कि कुढ़ कुढ़ के किसी न किसी तरह से निर्बलताओं, निन्दा, कठिनाईयों और सताव को सहना काफी है। किन्तु जब एक व्यक्ति यह समझ जाता है कि इन सब बातों से आत्मिक लाभ है, तब वह उनमें आनन्दित हो सकता है। परमेश्वर के मार्गों के इस प्रकाश में, पीड़ा आनन्द को उत्पन्न कर सकती है (मत्ती ५:११,१२; प्रेरित. ५:४०,४१; १६:२२-२५; १ पत. ५:१२-१४ से तुलना करें)।

यहाँ पौलुस आत्मिक सामर्थ की बात करता है, जो उसे मसीह का एक योग्य सेवक बनाती है। पौलुस अपनी निर्बलता में बलवान कैसे होता था। अपनी निर्बलता को महसूस करने के द्वारा उसने अपने ऊपर, अपनी सामर्थ, अपनी बुद्धि, अपनी योग्यता पर नहीं किन्तु मात्र परमेश्वर पर भरोसा रखा। १:८,९; १ कुरि. २:१-५ देखें। परमेश्वर की सामर्थ प्राप्त करने, व्यक्ति को अपने ऊपर से भरोसा हटाकर उस पर भरोसा रखना है। यशा. ४०:२८-३१ से तुलना करें। यह सामान्यतया मनुष्य के सोचने के विपरीत है।

१२:११ - ***"मूर्ख"*** - ११:१,१६,२१

***"तुम्हें तो मेरी प्रशंसा करनी चाहिए थी"*** ३:१-३; १ कुरि. ६:१-३

***"मैं कुछ भी नहीं"*** - ३:५; १ कुरि. ३:७; इफि. ३:८

१२:१२ - आत्मिक सत्य सिखाने के लिए परमेश्वर ने मसीह और उसके प्रेरितों के द्वारा चिन्ह दिए (यूहन्ना २:११ में टिप्पणी देखें)

***"अद्भुत कामों"*** ऐसे कार्य जिनसे आश्चर्य होता है (मत्ती १२:२२,२३; १५:३१; प्रेरित. २:१२; ३:१०)

***"सामर्थ के काम" "चमत्कार"*** - ऐसे कार्य जिन्हें अलौकिक शक्ति से किया जाता है। ये ***"एक प्रेरित के चिन्ह"*** थे। उनसे हम सीखते हैं कि प्रेरितों को चुना गया था, भेजा गया था और उन्होंने परमेश्वर के सत्य को सिखाया (प्रेरित ५:१२; १४:३; इब्रा. २:४)।

एक व्यक्ति परमेश्वर द्वारा चुना गया और भेजा गया है इसकी पुष्टि आश्चर्यकर्मों से नहीं, लेकिन क्या उसका संदेश, विश्वास और जीवन वचन की शिक्षा के अनुरूप है या नहीं, इससे है। यदि ऐसा नहीं है तो हमें अद्भुत कामों को शक की दृष्टि से देखना चाहिए। ऐसे लोगों को धन सम्पत्ति के लोभ को त्याग कर, पौलुस के समान जीवन जीना चाहिए। हम तब उनकी ज़रूर सुनना चाहेगें।

१२:१३ - ११:७-१२; १ कुरि. ९:१२-१८ क्षमा माँग कर शायद पौलुस हास्यरूप में बात कर रहा है। वह जानता है कि उनसे सहयोग लेकर उसने कुछ गलत नहीं किया है (७:२)।

१४ **देखो,** मैं तीसरी बार तुम्हारे पास आने को तैयार हूं, और मैं तुम पर कोई भार न रखूंगा; क्योंकि मैं तुम्हारी सम्पति नहीं, वरन्
तुम ही को चाहता हूं: क्योंकि बच्चों को माता-पिता के लिये धन बटोरना नहीं चाहिए, किन्तु माता-पिता को बच्चों के लिये।
१५ **मैं** तुम्हारी आत्माओं के लिये बहुत आनन्द से खर्च करूंगा, वरन् आप भी खर्च हो जाऊंगा : क्या जितना बढ़कर मैं तुम से प्रेम
१६ रखता हूं, उतना ही घटकर तुम मुझ से प्रेम रखोगे ? **ऐसा** हो सकता है, कि मैं ने तुम पर बोझ नहीं डाला, परन्तु चतुराई से तुम्हें
१७ धोखा देकर फंसा लिया। **भला,** जिन्हें मैं ने तुम्हारे पास भेजा, क्या उन में से किसी के द्वारा मैं ने छल करके तुम से कुछ ले
१८ लिया ? **मैं ने** तीतुस को समझाकर उसके साथ उस भाई को भेजा, तो क्या तीतुस ने छल करके तुम से कुछ लिया ? क्या हम
१६ एक ही आत्मा के चलाए न चले ? क्या एक ही रास्ते पर न चले ? **तुम** अभी तक समझ रहे होगे कि हम तुम्हारे सामने बहाना
बना रहे हैं। हम तो परमेश्वर को उपस्थित जानकर मसीह में बोलते हैं, और हे प्रियो, सब बातें तुम्हारी उन्नति ही के लिये
२० कहते हैं। **क्योंकि** मुझे डर है, कहीं ऐसा न हो, कि मैं आकर जैसे चाहता हूं, वैसे तुम्हें न पाऊं; और मुझे भी जैसा तुम नहीं चाहते
२१ वैसा ही पाओ, ऐसा न हो कि तुम में झगड़ा, डाह, क्रोध, विरोध, ईर्ष्या, चुगली, अभिमान और बखेड़े हों। **और** मेरे परमेश्वर
कहीं मेरे फिर से तुम्हारे यहां आने पर मुझ पर दबाव डालें और मुझे बहुतों के लिये फिर शोक करना पड़े, जिन्हों ने पहिले पाप
**१३** किया था, और उस गन्दे काम, और व्यभिचार, और कामुकता को, जो उन्होंने किया, छोड़ा नहीं। **अब** तीसरी बार तुम्हारे पास
२ आता हूं : दो या तीन गवाहों के मुंह से हर एक बात ठहराई जाएगी। **जैसे** मैं जब दूसरी बार तुम्हारे साथ था, वैसे ही अब दूर
रहते हुए उन लोगों से जिन्हों ने पहिले पाप किया, और दूसरे लोगों से अब पहिले कहे देता हूं, कि यदि मैं फिर आऊंगा, तो नहीं
३ छोड़ूंगा। **तुम** तो इस का प्रमाण चाहते हो, कि मसीह मुझ में बोलते हैं, जो तुम्हारे लिये कमज़ोर परन्तु तुम में ताकतवर हैं।
४ **वह** निर्बलता के कारण क्रूस पर चढ़ाए तो गये, तौभी परमेश्वर की ताकत से जीवित हैं, हम भी तो उस में बलहीन हैं; परन्तु परमेश्वर
५ के बल से जो तुम्हारे लिये हैं, उनके साथ जीएंगे। **अपने** आप को परखो, कि विश्वास में हो कि नहीं; अपने आप को जांचो,
६ क्या तुम अपने विषय में यह नहीं जानते, कि यीशु मसीह तुम में हैं? नहीं तो तुम निकम्मे निकले हो। **मेरी** आशा है, कि तुम जान

---

१२:१४,१५ - उनका प्रेम और संगति उसके लिए, उनके किसी भी आर्थिक सहयोग से बढ़कर था। ६:११-१३। वह मण्डली के लिए पिता के समान था (१ कुरि. ४:१५)। उसने बच्चों के प्रति पिता की जिम्मेदारी को समझा। वह उनके लिए सब कुछ (समय, शक्ति और योग्यता) खर्च करने के लिए तैयार था (७:३)। अपने सभी सेवकों में परमेश्वर यही देखना चाहते हैं। उन्हें ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि परमेश्वर के लोगों को क्या दें, न कि उनसे उनको क्या मिले।

१२:१६-१८ - ऐसा लगता है, कुछ लोग ऐसा कह रहे थे। यह सत्य है कि पौलुस ने कलीसिया से पैसा नहीं लिया था। उसका मुख्य उद्देश्य था कि यरूशलेम के मसीहियों के लिए चन्दा ले। (८:१६-२१; १ कुरि. १६:१-४)।

१२:१६ - इस पत्र में उसके घमण्ड और प्रेरिताई के बचाव पक्ष को रखने का कारण दिखता है। उनको गलतफहमी नहीं रखनी चाहिए। वह उनके सामने अपना पक्ष इस प्रकार नहीं रख रहे थे जैसे कि न्यायियों के सामने खड़े हों (१ कुरि. ४:१-५)। जो कुछ उसे उनसे कहना था, ***"घमण्ड"*** (१:१२ भी), वह भी उनके लाभ के लिए था, उसके फायदे के लिए नहीं। जो कुछ भी वह था (मसीह का प्रेरित) और उसके द्वारा सिखाए गए सत्य के द्वारा वे अपने आत्मिक जीवन में मजबूत किए जा सकते थे।

१२:२०,२१ - पौलुस यह बात जानता था कि वहाँ की कलीसिया कुछ मायने में कमज़ोर थी। दलबन्दी और यौन सम्बन्धी पापों में लिप्त थी (१ कुरि. १:११,१२; ३:३; ४:१८; ५:२,११; ६:१५,१६; ८:१; ११:१८,२२)। उसे इस बात का डर था कि यदि वे उसे और उन्हें सिखाए गए सत्य को स्वीकार नहीं करेंगे, तो स्थिति बहुत बिगड़ जाएगी। उसके वहां भेट देने पर उन्हें और उसे बड़ा दुःख भी होगा।

१३:१ - व्यव. १६:१५ शायद पौलुस का अर्थ यह था कि जो कुछ वे थे, जो कुछ वह था, वह सब साफ-साफ ज़ाहिर हो चुका था। दूसरे प्रमाणों को देने या देरी करने की आवश्यकता नहीं थी।

१३:२ - ***"तो नहीं छोड़ूंगा"*** - १ कुरि. ४:१८-२१; ५:३-५ उसका अर्थ यह है कि मसीह के प्रेरित की तरह वह अपने अधिकार का उपयोग करेगा ताकि अपराधी को दण्ड मिले।

१३:३,४ - ***"तुम तो इसका प्रमाण चाहते हो"***। इस पत्र में उसकी प्रेरिताई के पक्ष में यहाँ लिखा है। यदि दीनता और नम्रता के बदले वे अधिकार और सामर्थ का प्रदर्शन चाहते थे, वह देने के लिए तैयार था १०:१। उसकी प्रतीत होने वाली निर्बलता को देखकर उन्हें चोट लगी (१०:१०; १ कुरि. २:३)। वे मसीह की सामर्थ को पा जाएंगे। मसीह भी उन्हें कमज़ोर दिखता था (निर्बलता की अवस्था में क्रूस पर चढ़ाया गया था)। परन्तु वह उनके बीच जी उठने की सामर्थ के साथ जीवित था। यदि वे अपनी गलती को मान कर छोड़ेंगे नहीं, पौलुस अपनी इसी सामर्थ को प्रगट करेगा।

१३:५,६ - ***"अपने आपको जाँचो"*** वे पौलुस को परखना चाहते थे। वे इस बात का प्रमाण भी चाहते थे कि मसीह उसके द्वारा बात करते हैं (पद ३)। पौलुस कहता है कि यदि वे अपने आपको परखें, तो अच्छा होगा। यदि वे सफल होते हैं, और इस बात का उन्हें निश्चय है कि मसीह उनमें हैं, उन्हें यह जान लेना चाहिए कि उनका आत्मिक पिता - १ कुरि. ४:१५ भी जाँचे जाने के बाद सही निकला था।

यह परखा जाना क्या था ? शिष्यों को यह क्यों और कैसे करना चाहिए? इसका उद्देश्य यह होता है कि हम यह देखें, कि विश्वास में है या नहीं - वह यह कि हमने परमेश्वर की सच्चाई को कबूल करने के बाद विश्वास किया और उस पर चल रहे हैं या नहीं ? कहीं हम नाम के शिष्य तो नहीं हैं ?

हम स्वयं को कैसे परखें ? अपने हृदय में देखने के द्वारा कि वहाँ क्या है (यदि हम ऐसा करे तो रोमि. ७:१८,२१ की तरह कुछ पाएंगे) मात्र अपनी भावनाओं को परखने के द्वारा नहीं। (हमारी भावनाएँ ऊपर नीचे होती रहती हैं और हमारे आत्मिक

७ लोगे, कि हम स्वयं जांचे जाने पर नकली नहीं निकले हैं। **हम** अपने परमेश्वर से यह प्रार्थना करते हैं, कि तुम कोई बुराई न करो;
८ इसलिये नहीं, कि हम खरे देख पड़ें, पर इसलिये कि तुम भलाई करो, चाहे हम निकम्मे ही ठहरें। **क्योंकि** हम सत्य के विरोध
९ में कुछ नहीं कर सकते, पर सत्य के लिये कर सकते हैं। **जब** हम निर्बल हैं, और तुम बलवन्त हो, तो हम आनन्दित होते हैं,
१० और यह प्रार्थना भी करते हैं, कि तुम पूरी तरह से योग्य हो जाओ। **इस** कारण मैं तुम्हारे पीठ पीछे ये बातें लिखता हूं, कि उपस्थित
होकर मुझे उस अधिकार के अनुसार जिसे प्रभु ने बिगाड़ने के लिये नहीं, लेकिन बनाने के लिये मुझे दिया है, कड़ाई से कुछ करना
११ न पड़े। **अन्त** में, हे भाइयो, बहनों आनन्दित रहो; चरित्र बेहतर होता जाए; हिम्मत रखो; एक ही मन रखो; मेल से रहो, और प्रेम
१२,१३ और शान्ति के दाता परमेश्वर तुम्हारे साथ होंगे। **एक** दूसरे को पवित्र चुम्बन से नमस्कार करो। **सब** पवित्र लोग तुम्हें नमस्कार
१४ करते हैं। **प्रभु** यीशु मसीह की महानकृपा और परमेश्वर का प्रेम और पवित्र आत्मा की सहभागिता तुम सब के साथ होती रहे।

---

जीवन की सही हालत नहीं बता सकती)। हमें अपने कार्यों को परखने और वचन के प्रति आज्ञाकारिता या अनाज्ञाकारिता के आधार पर अपनी जाँच करनी चाहिए।

हम जानते हैं कि फल से वृक्ष पहचाना जाता है (मत्ती ७:१६-२०; इब्रा. ६:६,१०)। यदि मसीह के साथ हमारा अनुभव नहीं है और हम उसके प्रति आज्ञाकारी नहीं है। यदि हमारा जीवन और सोच विचार परमेश्वर के वचन के विपरीत है, तो हम कैसे कह सकते हैं कि हम मसीह के हैं ? किन्तु यदि हम जानते हैं कि मसीह के साथ हमें कुछ अनुभव है और उसके वचन को मानना चाहते हैं (हालांकि हमारे प्रयास नाकामयाब हो सकते है)। यह भी कि उद्धार पाने के लिए हमें जो करना है, हमने किया है, तो हम कह सकते हैं कि मसीह हमारे भीतर हैं। १ यूहन्ना ५:६-१३; २:४; ३:१०,१४,२४। यह जानने के लिए कि हम विश्वास में हैं कि नहीं, हमें वह सब करना चाहिए जो करने की आवश्यकता है - इब्रा. ६:११; २ पत. १:१०। यदि हम पास नहीं होते है, हमें निराश नहीं होना चाहिए। हमें पूरे मन परिवर्तन की आवश्यकता है।

***"यीशु मसीह तुम में है"*** यूहन्ना १७:२३; रोमि. ८:६,१०; कुलु. १:२७; प्रका. ३:१०

१३:७-९ - वह पुनः अपने विचारों में उन्हें रखता है - उसकी इच्छा यह है कि वे परमेश्वर के साथ सही सम्बन्ध रखें। चाहे, उन्हें स्वयं इस पर सन्देह हो। यदि वे परमेश्वर के प्रति सच्चे हों, तो इसके लिए वह कुचले जाने तक के लिए तैयार था। वह हर बात में सत्य के लिए जीवित रहना चाहता था (१ कुरि. ६:२३; २ तीमु. २:१०)।

१३:९ - ४:१२; १ कुरि. ४:६-१३ देखें।

***"सिद्ध हो जाओ"*** - ७:१; मत्ती ५:४८ के नोट्स देखें। हमारे स्वयं और दूसरों के लिए ***'पूरी आत्मिक समझदारी'*** लक्ष्य होना चाहिए ***"प्रेम और शान्ति का परमेश्वर"***

१३:१० - पद २; १ कुरि. ४:२१।

१३:११ - ***"सिद्ध हो जाओ"*** - पद ६; ७:१ देखे मत्ती ५:४८ अपने प्रति तथा दूसरों के प्रति हमारा उद्देश्य आत्मिक परिपक्वता ही होना चाहिए।

***"प्रेम तथा शांति का परमेश्वर"*** - इब्रा. १३:२०; १ यूहन्ना ४:८।

१३:१२ - ***"चुम्बन"*** - रोमि. १६:१६

१३:१४ - यहाँ पर यह पद सत्य से भरा है। यीशु इस पद में हैं। वह प्रभु और मसीह दोनों हैं (प्रेरित २:३६। 'प्रभु' के सम्बन्ध में लूका २:११; फिलि २:१०,११; ***"मसीह"*** के सम्बन्ध में मत्ती १:१ में नोट्स देखें। दया के द्वारा पापी बचते हैं, विश्वासी आशीष पाते हैं (८:६; यूहन्ना १:१४-१७; गल १:६) मसीह दया का स्त्रोत हैं, कहने का अर्थ है, यीशु परमेश्वर हैं।

फिलि २:६ में पद देखें।

इस पद में परमेश्वर पिता के विषय में भी है। परमेश्वर ने मसीह यीशु को भेजा (यूहन्ना ३:१६; रोमि. ५:८; १ यूहन्ना ४:१०) परमेश्वर के प्रेम के बारे में पद ११ में है। यह परमेश्वर का प्रेम दिखाता है। परमेश्वर के प्रेम के कारण मसीह ने आकर दया दिखायी। उनकी दया के कारण परमेश्वर का प्रेम, विश्वासियों के साथ रह सकता है।

यहाँ पवित्र आत्मा भी हैं। यूहन्ना १४:१६,१७ के नोट्स देखें। उसका व्यक्तित्व यहाँ है। हम सहभागिता व्यक्ति के साथ रख सकते हैं, अचेतन प्रभाव या सामर्थ से नहीं। पवित्र आत्मा के द्वारा परमेश्वर विश्वासी में रहते हैं। उन्हीं के द्वारा हमारी संगति पिता परमेश्वर और मसीह यीशु के साथ है (१ यूहन्ना १:३)।

इस पद में त्रिएकत्व है। उद्धार के कार्य में पवित्रीकरण और विश्वासियों की आशीष में प्रत्येक का अपना महत्व है।

मत्ती ३:१६,१७ में त्रिएकत्व पर टिप्पणी देखें।